रोज दी - स्मृति

आधी दुनिया

वर्ष-31, अंक -2, अप्रैल-जून 2025

महिला शिक्षण सामग्री

डॉ. रोज केरकेट्टा

वंचित वर्ग-चेतना की लेखिका, विचारक और आंदोलनकारी

पहरेदार

गेहूं के खेत में
गूंजे उसकी विद्रोही आवाज
इससे पहले ही वह औरत
हो चुकी थी फरार
गेहूं के खेत में
घुसी थी, अकेली थी
गेहूं के खेत से बाहर
आई तब भी,
वह अकेली ही थी।
सड़क पर आई
चढ़ी बोलेरो पर
जिस पर तैनात दो मुस्टंडे
कौन थे वे, क्या नाम था उनका
शायद रक्षक, शायद भक्षक
बात अबूझ
कुछ ऐसी है कि
सड़क पर खड़े थे कुछ मजदूर
उनका बयान जारी हुआ
बोलेरो आकर रूकी थी
एक औरत उतरी थी
औरत खेत तक गई थी
औरत वापस आई थी
औरत बोलेरो पर चढ़ी थी
दो मुस्टंडे बैठे थे
वे न तो उतरे थे, न तो वे चढ़े थे
दस मिनट बाद तेज धूप में
बच्चा रोया, खेत में
पाया गया नंगा था, खून से सना था
वहां न उसकी मां थी
न उसका बाप था
क्या बच्चा भुईं फुट था ?
स्त्री तो
पहरे में गर्भवती होती
जनती भी पहरेदारी में
दूध पिलाती पहरेदारी में
फेंक भी आती पहरेदारी में
कौन हैं ये पहरेदार ?
शायद नाम उनका ऐसा है
पति
प्रेमी
रेपिस्ट, रिश्तेदार
पर वे हमारे जग नियंता नहीं।

- रोज केरकेट्टा

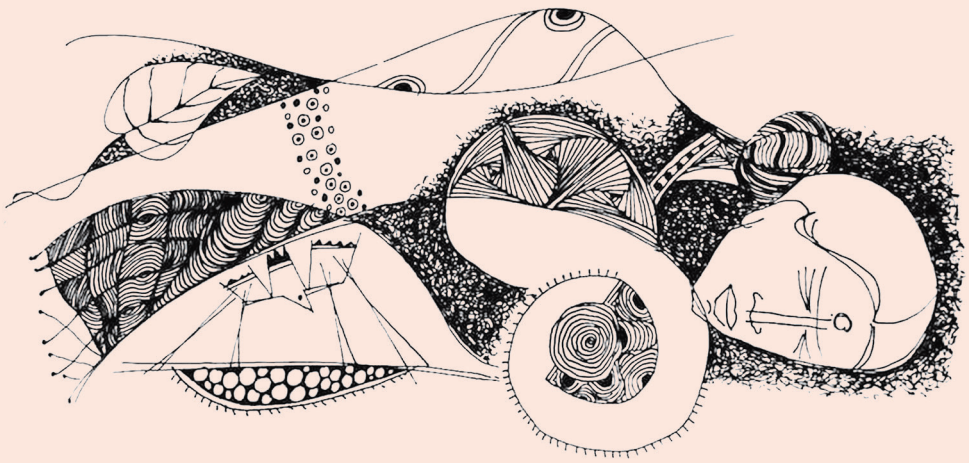

वर्ष-31, अंक-2, जनवरी-मार्च 2025

आधी दुनिया

संपादक
रोज केरकेट्टा स्मृति संपादन

संपादक मंडल
साल्गे मार्डी
सुनील मिंज
श्रावणी
शशि बारला

कलापक्ष
इंडिजिनोग्राफिक्स

संपादन कार्यालय
संवाद
104/ए, उर्मिला इन्क्लेव
पीस रोड, लालपुर
रांची - 834001 (झारखंड)
E-mail : **sarjomsamvad@gmail.com**
Website : **www.samvad.net**

पत्रिका में प्रकाशित आलेखों में व्यक्त विचार लेखकों के हैं, उनसे संपादकीय सहमति अनिवार्य नहीं है।

आई.डी.पब्लिशिंग, रांची द्वारा मुद्रित

सीमित प्रसार

अनुक्रम

03	एक नहीं, हजारों डॉ. रोज केरकेट्टा की आवश्यकता	**नीतिशा खलखो**
07	साहित्यकार रोज केरकेट्टा	**सावित्री बड़ाईक**
11	रोज दी : एक सखा, एक संघर्षशील साथी	**मालंच घोष**
12	शिक्षा की जोत डॉ. रोज	**डॉ. शांति खलखो**
14	साहित्य, समाज और संघर्ष की प्रतीक : रोज केरकेट्टा	**कुमुद**
16	झारखंड में महिलाओं के सशक्तिकरण में डॉ. रोज केरकेट्टा का योगदान	**किरण**
18	रोज दी ! जो अमर हैं	**सचि कुमारी**
19	रोज दीदी को अंतिम जोहार	**डॉ. माया प्रसाद**
20	प्रो. डॉक्टर रोज केरकेट्टा - रोज दी	**कल्याणी मीणा**
22	रोज केरकेट्टा जी के साथ मेरी यादगार यात्रा	**पुष्पा सेकुन्दा टेटे**
26	परिवर्तन का मुखर स्वर रोज केरकेट्टा	**आलोका कुजूर**
27	डाक्टर रोज केरकेट्टा : अनफोल्ड किताब	**शांति सवैंया**
30	रोज दी के अधूरे सपनों को पूरा करना है	**कोर्दूला कुजूर**
31	रोज मौसी : संघर्ष, संवेदना और सृजन की प्रतीक	**रोजालिया तिर्की**
32	डॉक्टर रोज केरकेट्टा से रोज दी बनने का सफ़र	**सीमा**
33	डॉ. रोज केरकेट्टा : स्मृति शेष	**शशि बारला**
35	अश्रुपूर्ण भावांजलि	**श्रावणी**
37	रोज माँ : हरे महुआ गाछ की तरह जीवित स्मृति	**जसिन्ता केरकेट्टा**
38	रोज जी से रोज दी	**हेमंत**
39	हमारे लिए रोज दी हुआ करती थी	**प्रिय दर्शन**
40	सौम्य आवाज़, बुलंद व्यक्तित्व : मेरी रोज आंटी	**स्वाति शबनम**
41	रोज दी को अंतिम जोहार!	**रणेंद्र**
45	रोज दी जो स्थान रिक्त कर गयी, वह भरना मुश्किल	**विनोद कुमार**
47	धरती मेरा शरीर : रोज केरकेट्टा और विश्व आदिवासी कविता	**रविभूषण**
48	इञाः गमगम जेः तिंजाः ते... – माँ की अंतिम सीख	**वंदना टेटे**
50	रोज दी : जो संवाद रचती रहीं...	**घनश्याम**
51	रोज दी : स्मृति, संघर्ष और संकल्प की विरासत	**वीणा वर्मा**

संपादकीय

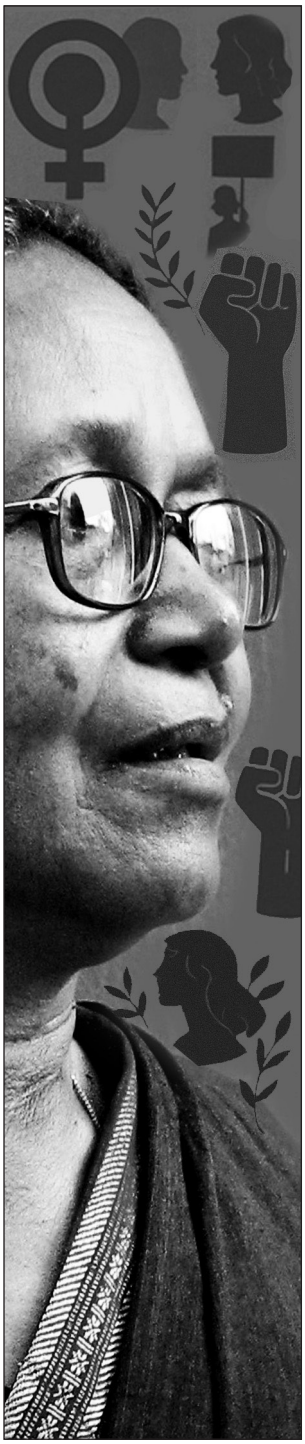

'आधी दुनिया' का संपादन कार्य मैंने अपने हाथ में लिया, तब से विविध विषयों पर अंकों को केंद्रित करने की चेष्टा की। पत्रिका वास्तव में महिलाओं में पढ़ने-लिखने की अभिरुचि जगाने की कोशिश है। ग्रामीण स्तर पर बहुत सी जानकारियां नहीं पहुंच पातीं। महिला उत्पीड़न, महिलाओं की सुरक्षा के लिए किये जा रहे प्रयास, कानून, महिलाओं की प्रतिक्रियाएँ इस पत्रिका में शामिल की जाती हैं। इसके अलावा स्वयं महिलाएं अपने प्रयासों को अभिव्यक्ति दें, यह भी हमारी कोशिश रहती है। नई जानकारी में स्वास्थ्य, कृषि, उद्यम, उद्योग, महिला एवं बाल अधिकार आदि विषय हैं। महिलाओं का ना लिखना एक वैश्विक समस्या है। इस कठिनाई से 'आधी दुनिया' भी ग्रस्त है।

– रोज केरकेट्टा

(आदिवासी देशज संवाद, पृष्ठ - 43)

एक नहीं, हजारों डॉ. रोज केरकेट्टा की आवश्यकता

नीतिशा खलखो

डॉ. रोज केरकेट्टा के भीतर सवर्ण समाज के ज्यादातर प्रोफेसरों की तरह 'सभ्य बनाने' या 'सुधारने' की मानसिकता नहीं थी। वे केवल एक शिक्षिका नहीं, बल्कि एक पीढ़ी की प्रतिनिधि स्वर बनकर हमारे बीच उपस्थित रहीं। उन्होंने न्याय की मांग की। अपने समाज, सत्ता और संपूर्ण मानवता से लगातार सवाल पूछे।

एक सामाजिक अगुआ का यूं चले जाना, जो चिंगारी बनकर धधकती रहीं, जिन्होंने क़ौम को जीने की वजहें बताईं, जिन्होंने मशाल को थामे रखने और सच्चाई के लिए लड़ते हुए कभी पीठ नहीं दिखाई। वह योद्धा थीं – डॉ. रोज केरकेट्टा (5 दिसंबर, 1940 – 17 अप्रैल, 2025)।

बीते गुरुवार को वह चिरनिद्रा में लीन हो गईं। उनका शरीर थक सकता था, लेकिन मंशा कभी नहीं थकी, और वह सोई नहीं, बल्कि अपने शब्दों और विचारों की विरासत छोड़कर आने वाली पीढ़ियों के लिए रास्ता दिखा गई हैं।

उनका जीवन केवल कलम से नहीं, बल्कि कर्म से भी ओत-प्रोत रहा है। उनकी लेखनी आंदोलन की ज़मीन पर रचा गया एक दस्तावेज़ है। उन्होंने बहुत कुछ लिखा, मगर उनकी लेखनी, जो खड़िया भाषा और साहित्य की समृद्ध परंपरा को दर्शाती है, वह अजर-अमर है। उनकी अन्य कृतियों को भी नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता, जैसे उनका शोध ग्रंथ – 'खड़िया लोक कथाओं का साहित्यिक और सांस्कृतिक अध्ययन'। यह बौद्धिक हस्तक्षेप, जो खड़िया समाज की सांस्कृतिक जड़ों और लोक परंपराओं का विश्लेषण प्रस्तुत करता है, वह वास्तव में अतुलनीय है।

आज़ादी के बाद आदिवासी महिला लेखन की मज़बूत आवाज़ डॉ. रोज केरकेट्टा ने प्रेमचंद की कहानियों का खड़िया में अनुवाद किया, जिसका शीर्षक 'प्रेमचंदाअ

लुङकोय' है। उनका यह तर्जुमा न केवल भाषायी समन्वय का एक सुंदर उदाहरण है, बल्कि यह एक साहित्यिक सेतु भी स्थापित करता है। उनकी अपनी कहानियां भी आदिवासी समाज के बारे में बहुत कुछ बयां करती हैं। 'सिंकोय सुलोओ', 'पगहा जोरी-जोरी रे घाटो', तथा 'बिरुवार गमछा तथा अन्य कहानियां' जैसे कहानी संग्रह सामाजिक यथार्थ और आदिवासी जीवन के विविध पक्षों को उजागर करते हैं। कविताएं और लोककथाओं पर आधारित किताबें 'हेपड़ अवकडिञ बेर' तथा 'अबसिब मुरडअ' खड़िया दर्शन की गहराई को अभिव्यक्त करती हैं।

'जुझइर डांड़' उनके महत्त्वपूर्ण नाटक संग्रहों में से एक है। वहीं, 'सेंभो रो डकई' जैसी लोकगाथा खड़िया लोकस्मृति को जीवंत करती है। 'खड़िया विश्वास के मंत्र' जैसी संपादित पुस्तकें धार्मिक और सांस्कृतिक विश्वासों को संजोए हुए हैं। इसके अतिरिक्त, 'खड़िया गद्य-पद्य संग्रह', 'खड़िया निबंध संग्रह', और 'स्त्री महागाथा की महज एक पंक्ति' जैसे निबंध संग्रह सामाजिक चेतना और विचारशीलता को सामने लाते हैं। जीवन चरित लेखन में 'प्यारा मास्टर' नामक जीवनी एक प्रेरणादायक दस्तावेज़ है, जो खड़िया समाज के एक विशिष्ट व्यक्तित्व की

जीवनयात्रा को दर्शाती है।

रोज केरकेट्टा ने जल-जंगल-ज़मीन की लूट पर आदिवासी स्त्री दृष्टिकोण से कटाक्ष करते हुए खुलकर और जमकर कलम चलाई है। अपने पिता, प्यारा केरकेट्टा की समाज सेवा की परंपरा को आगे बढ़ाने वाली यह काया आज भी हमारे लिए प्रेरणास्त्रोत है, जिन्होंने अपनी पीढ़ियों के रूप में आदिवासी समाज के लिए लेखक दिया। उनकी बेटी वंदना टेटे, दामाद अश्विनी कुमार पंकज और नाती अटूट संतोष सभी लेखन कर्म से जुड़े हुए हैं। वंचित समाज के प्रश्नों को सीमित संसाधनों के बावजूद वंदना टेटे-अश्विनी कुमार पंकज दंपत्ति ने बहुत आगे बढ़ाया है।

आदिवासी साहित्य को समृद्ध करने में रोज़ केरकेट्टा उसी पौध की खेप रहीं, जो निरंतरता से आदिवासी समाज को साहित्यिक दिशा देने का काम करती रही है। 'झारखंडी साहित्य अखड़ा' और 'प्यारा केरकेट्टा फाउंडेशन' जैसे संगठन रोज़ केरकेट्टा की कर्मभूमि को बहुत स्पष्ट रूप से रेखांकित करते रहे हैं।

रांची विश्वविद्यालय का 'जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषा विभाग' (टीआरएल), जो विभिन्न सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनीतिक आंदोलनों की जननी रहा है, वहीं की वे रचनात्मक माली रही हैं। उन्होंने अपनी सेवाएं मात्र स्नातकोत्तर विद्यार्थियों को ही नहीं दीं, बल्कि बहुत सशक्त रूप से एक बौद्धिक-साहित्यिक फ़ौज को भी खड़ा किया है। टीआरएल में स्थित 'सखुआ' और 'करम' पेड़ की छांव में पले आंदोलनकारियों के बीच रोज़ केरकेट्टा ज्ञान की रोशनी बनकर रहीं।

रोज़ केरकेट्टा ने न केवल पितृसत्ता से सीधे टकराते हुए आदिवासी स्त्री के हक की बात की, बल्कि न्याय और समानता को अपने जीवन का मूल मंत्र बना लिया। वह सबके लिए बेहद आत्मीय थीं। हर उम्र के लोगों से वे बहुत सहजता से जुड़ती थीं। शोधार्थियों के लिए सहज उपलब्ध होना उनके व्यक्तित्व का हिस्सा रहा है। फ़ेसबुक में या मेल पर उनसे जवाब पाना, हम विद्यार्थियों के लिए किसी आशीर्वाद से कम नहीं होता था। दिल्ली में बैठकर भी हम अपने शोध विषयों को लेकर उनसे विचार-विमर्श कर पाते थे। मैंने जब भी फेसबुक पर उनके लेखन को लेकर उनसे मदद मांगी, वे हमेशा फोन पर उपलब्ध रहीं। मेरी मां, डॉ. शांति खलखो, उनकी शिष्या रही हैं – इस नाते भी वे मेरे लिए विशेष रूप से सम्माननीय रहीं। उनके कार्यक्षेत्रों को मां के ज़रिए जानने का मौक़ा हर बार मिला। और मैं उनके कार्यों के बारे में भौंचक्का होकर सोचती रही कि कोई इतना साहसी कैसे हो सकता है! क्या सब कुछ खोने का डर उनमें नहीं था?

क्या यूनिवर्सिटी में बैठा हुआ प्रोफेसर अन्याय के माहौल में 'ऑब्जेक्टिविटी' की आड़ में तटस्थ रह सकता है?

डॉ. रोज केरकेट्टा की जीवनी हमें सिखाती है कि लेखक, बुद्धिजीवी या अकादमिक जगत का प्रोफेसर आग लगी दुनिया को अनदेखा नहीं कर सकता है, बल्कि उसे आग बुझाने और सामाजिक परिवर्तन के लिए सदैव प्रत्यनशील रहना चाहिए। डॉ. रोज केरकेट्टा ने कभी भी सत्ता-सुख पाने के लिए जनवादी आंदोलन को पीठ नहीं दिखाई, बल्कि उन्होंने मशाल-ए-राह उठाकर उसकी अगुआई की है। कई सामाजिक और राजनीतिक आंदोलनों में उनकी सक्रिय भागीदारी आज के झारखंड की नींव में गहराई तक समाई हुई है।

चाहे वह झारखंड राज्य का निर्माण हो, आदिवासी भाषाओं के पठन-पाठन का संघर्ष, या फिर आदिवासी महिलाओं के संपत्ति अधिकार का मुद्दा – हर मोर्चे पर उन्होंने अपनी उपस्थिति सजगता और प्रतिबद्धता के साथ दर्ज कराई। उनका जुड़ाव वामपंथी और आदिवासी संगठनों से निरंतर रहा।

डॉ. रोज केरकेट्टा से जुड़ा हुआ एक प्रसंग याद आता है। जब मैंने 2011 में जेएनयू में एम.फिल. की प्रवेश परीक्षा के दौरान उनके कहानी संग्रह 'पगहा जोरी जोरी रे घाटो' और 'आदिवासी स्त्री के सवाल' पर आधारित 'सिनॉप्सिस' तैयार किया था, तब इंटरव्यू बोर्ड ने शीर्षक को देखकर उसे बांग्ला समझ लिया और मेरी बात को काटने की कोशिश की।

मैंने उन्हें समझाया कि यह हिंदी में लिखा गया कहानी संग्रह है और 'पगहा जोरी जोरी रे घाटो' एक झारखंडी संस्कृति की लोकोक्ति है। इंटरव्यू में बैठे प्रोफेसर साहब को हर बात में 'हां' कहने वाले छात्र बिल्कुल भी पसंद नहीं थे, और उन्होंने गुस्से में आकर मेरे विषय को लेकर कहना शुरू किया – 'हिंदी का इंटरव्यू बोर्ड है और तुम बांग्ला बोल रही हो। पहले तुम बांग्ला बोलना बंद करो।'

जब मैंने फिर से स्पष्ट किया कि यह हिंदी में आया हुआ कहानी संग्रह है, तब भी उन्होंने मेरी एक न सुनी और अपनी ज़िद पर अड़े रहे। उन्होंने अपने 'ज्ञान' और 'मनसब' का भय दिखाकर मुझे लगभग खामोश कर दिया। इसी बीच वहां बैठे एक अन्य वरिष्ठ शिक्षक ने कहा, 'यह हिंदी का ही कहानी संग्रह है।' तब जाकर नाराज़ प्रोफेसर महाशय थोड़ा शांत हुए।

यूनिवर्सिटी में जिस तरह से शिक्षक और छात्र के रिश्तों को महिमामंडित करके दिखाया जाता है, वैसा वास्तव में होता नहीं। शिक्षक विश्वविद्यालय के भीतर अपनी मनमानी चलाते हैं, और वंचित समुदाय के छात्रों पर उनका प्रकोप कुछ अधिक ही दिखता है। जेएनयू में झारखंड की एक महिला छात्रा को क्या-क्या झेलना पड़ता है, यह एक अलग लंबा किस्सा है, जिसे कभी और विस्तार से लिखूंगी।

मैं सिर्फ़ इतना कहना चाहूंगी कि उस दिन एक सीनियर के कहने पर मैं न चाहकर भी थोड़ा पीछे हटी और प्रोफेसर महाशय को अपनी बात समझाने की यथासंभव कोशिश की। शुक्र है कि बात ज्यादा नहीं बिगड़ी और मेरा दाखिला हो गया। मगर उसी घटना के बाद से हिंदी सेंटर में बैठे सवर्ण मानसिकता वाले प्रोफेसर की सोच जानकर मन को बहुत दुख हुआ।

कई बार सोचा कि हिंदी के जो प्रोफेसर हिंदी भाषा को 'राष्ट्र भाषा' कहने की जानबूझकर गलती करते हैं, वे स्वयं राष्ट्र की विविधता और उसके वंचित समाज को लेकर कितने अज्ञानी और पूर्वाग्रही हैं। यह घटना इस बात की ओर भी इशारा करती है कि मुख्यधारा का हिंदी साहित्य आदिवासी समाज के प्रति उपेक्षा का भाव रखता है। वह न तो आदिवासी समाज की भाषा-संस्कृति को समझना चाहता है, न ही उनके प्रकृति-संबंधी गहरे जुड़ाव को स्वीकार करता है। वह आदिवासियों के चर-अचर के साथ उनके सहज संबंधों को समझने से कतराता है। जब जेएनयू के भाषा, साहित्य और संस्कृति अध्ययन स्कूल के अंतर्गत आने वाले भारतीय भाषा केंद्र की यह स्थिति है, तो देश के अन्य विश्वविद्यालयों की हालत का अंदाज़ा लगाया जा सकता है।

एक और क़िस्सा उस दौर का है जब आदिवासी विषय पर केंद्रित एक उपन्यास काफ़ी चर्चा में था। जेएनयू में भी उस किताब पर विमर्श चल रहा था। उसी दौरान उस किताब पर परिचर्चा का आयोजन छात्रों ने किया, जिनमें मैं भी शामिल थी। चर्चित किताब के लेखक को परिचर्चा में भाग लेने के लिए मना लिया गया। सब कुछ ठीक चल रहा था। हिंदी सेंटर के सभी प्रोफेसरों को आमंत्रित किया गया था। मगर ज्यादातर प्रोफेसरों ने हमें निराश किया और आखिरी वक़्त पर न आने का बहाना बना दिया।

सिर्फ़ एक प्रोफेसर ज़रूर पधारे, लेकिन वह न तो कार्यक्रम को सुनने की इच्छा से आए थे, न ही कुछ जानने की जिज्ञासा लेकर। हिंदी सिनेमा में जिस तरह पुलिस पर्दा गिरने से कुछ पल पहले आती है, उसी तरह वे आए – और कुछ ऐसी बातें कहीं जिनका डंक आज भी दर्द के साथ महसूस होता है।

जेएनयू के उस विद्वान प्रोफेसर की 'संजीदगी' का आलम यह था कि वे न चर्चा में शामिल थे, न उन्होंने उपन्यास पढ़ा था। फिर भी टिप्पणी करने से पीछे नहीं हटे। उन्होंने झारखंड के विद्यार्थियों को जेएनयू में देखकर एक लंबा-चौड़ा प्रवचन दे दिया। उनके शब्दों से पूर्वाग्रह की दुर्गंध ऐसी महसूस हुई जैसे कोई बिना मुंह धोए बहुत पास से बात कर रहा हो। उन्हें झारखंड के छात्रों, खासकर आदिवासी समुदाय के बच्चों में कोई भी सकारात्मकता नज़र नहीं आई। वे वही बातें दोहरा रहे थे जो उपनिवेशवादी या उत्तर-उपनिवेशवादी 'दिकु' लेखकों की लेखनी में दिखती हैं। आदिवासी समाज के छात्र उन्हें निकम्मे लगे, जो सरकार

के वज़ीफ़े पर 'मस्ती' करते हैं।

उस सवर्ण प्रोफेसर ने यहां तक कहा कि झारखंड के विद्यार्थी वज़ीफ़े से बुलेट मोटरसाइकिल चलाते हैं, शराब पीते हैं, और फ्री में रहते हैं। उनका 'कंसर्न' यह था कि इन बिगड़े हुए बच्चों को सुधारा जाना चाहिए, और इस दिशा में आदिवासी विमर्श तथा उपन्यासकार कुछ 'जागरूकता' लाने का प्रयास करें। उनकी बड़ी-बड़ी दो आंखें जल, जंगल और ज़मीन की लूट को देखने के लिए तैयार नहीं थीं। वे यह भी स्वीकार करने को राज़ी नहीं थे कि कैसे आदिवासी इलाकों में गैर-आदिवासी आबादी के लिए शहर बसाए जा रहे हैं – और उस प्रक्रिया में आदिवासियों के घर और उनकी ज़मीनें लूटी जा रही हैं, ताकि वहां बड़ी-बड़ी इमारतें बनाई जा सकें।

यह सब देखकर मैं अंदर ही अंदर बहुत दुखी और आक्रोशित हो रही थी। मगर एक तरह की विवशता भी मुझे बांधे हुए थी। आयोजन की ज़िम्मेदारी मेरी ही थी और जलसे में आमंत्रित अतिथि ही आदिवासी समाज का अपमान कर रहा था। हालांकि वह दौर मेरे लिए जेएनयू में बहुत नया था और उस दिन मैं अपना एमए पूरा कर रही थी। मैं खून का घूंट पीकर रह गई और बेहूदगी से भरी इस टिप्पणी पर कोई जवाब नहीं दिया।

इन सबका ज़िक्र करने के पीछे यही मक़सद है कि यह बात वंचित समाज को समझ आनी चाहिए कि शिक्षा के क्षेत्र में हमें बहुत काम करने की ज़रूरत है। हमें हिंदी और अन्य विभागों में एक नहीं, हज़ार रोज केरकेट्टा की ज़रूरत है। हालांकि यह कहने पर हमारे कुछ प्रगतिशील दोस्त नाराज़ हो जाते हैं, मगर यह एक हद तक सच है कि सवर्ण समाज के ज्यादातर प्रोफेसर आदिवासी प्रश्न को या तो एक 'सुधारक' के तौर पर देखते हैं या फिर अपने भीतर आदिवासी समाज को लेकर गहरे पूर्वाग्रह छिपाए होते हैं।

ज्यादातर गैर-आदिवासी प्रोफेसर आदिवासियत को समझने के लिए केवल सवर्णवादी लेंस का सहारा लेते हैं और हमें ज्ञान देने से कभी नहीं थकते। उन्होंने कभी भी हमें सुनने या समझने की संजीदा कोशिश नहीं की है। इन बातों का उल्लेख करने के पीछे सिर्फ़ यही मंशा है कि हमें रोज केरकेट्टा और अन्य प्रोफेसरों के अंतर को समझना होगा। आदिवासी छात्रों के साथ जिस प्रकार विश्वविद्यालयों में हर रोज़ 'हाथ का अंगूठा' काटा जा रहा है, उस पर बात करना साहित्य का एक प्रमुख उद्देश्य होना चाहिए।

शैक्षणिक संस्थान किस तरह से वंचित समाज के साथ भेदभाव और अन्याय करते हैं, ऐसी बहुत-सी बातें दलित साहित्य की आत्मकथात्मक लेखनी में आई हैं और आ रही हैं। आदिवासी लेखकों को भी चाहिए कि वे शैक्षणिक संस्थानों के अपने अनुभवों को कलमबद्ध करें और उन्हें दुनिया के सामने लाए। शायद रोज केरकेट्टा को श्रद्धांजलि देने का यह एक बेहतरीन तरीक़ा हो सकता है। वजह यह कि डॉ. रोज केरकेट्टा इन सभी बाहरी और भीतरी आघातों के बीच भी अपनी कलम को कभी झुकाए बिना थामे रहीं। उनका सबसे बड़ा योगदान यही है कि वे वंचित समाज की सशक्त आवाज़ बनीं। उन्होंने न तो कभी वंचितों की अस्मिता को छिपाया, न ही उससे किनारा किया, बल्कि उसे जिया, और पूरे स्वाभिमान के साथ सामने रखा। उनके पढ़ाए हुए छात्र स्वयं इस बात की गवाही देते हैं कि उन्होंने कभी किसी पर अपनी बात नहीं थोपी। वे सुनने को अधिक महत्व देती थीं।

उनके भीतर सवर्ण समाज के ज्यादातर प्रोफेसरों की तरह 'सभ्य बनाने' या 'सुधारने' की मानसिकता नहीं थी। वे केवल एक शिक्षिका नहीं, बल्कि एक पीढ़ी की प्रतिनिधि स्वर बनकर हमारे बीच उपस्थित रहीं। उन्होंने न्याय की मांग की। अपने समाज, सत्ता, और संपूर्ण मानवता से लगातार सवाल पूछे।

डॉ. रोज केरकेट्टा एक मशाल थीं, और रहेंगी। आदिवासी महिलाओं के अधिकारों को लेकर जो संजीदगी उन्होंने दिखाई – विशेष रूप से आर्थिक न्याय के सवाल पर – वह आने वाली पीढ़ियों के लिए एक उलगुलान की तरह प्रेरणा बनकर जीवित रहेगी। उनकी पक्षधरता, उनकी जीवन दृष्टि, यह सब आदिवासी महिला आंदोलन को नई दिशा देगा।

उन्हें अंतिम जोहार!

साभार : **फारवर्ड प्रेस**

साहित्यकार रोज केरकेट्टा

सावित्री बड़ाईक

डॉ. रोज केरकेट्टा हिन्दी और खड़िया की वरिष्ठ लेखिका और साहित्यकार थीं। उनके सांस्कृतिक, साहित्यिक अवदानों को ध्यान में रखते हुए उन्हें कई महत्वपूर्ण सम्मान से सम्मानित किया गया। वीरांगना रानी दुर्गावती राष्ट्रीय सम्मान-2008 (मध्य प्रदेश सरकार), अयोध्या प्रसाद खत्री सम्मान-2012 और प्रभावती सम्मान-2014 ।

डॉ. रोज केरकेट्टा आदिवासी पत्रिका, छोटानागपुर संदेश, साल-पत्र, युद्धरत आम आदमी, चौमासा, जोहार में लेखन करती रही। वे एक्टिविस्ट लेखिका होने के कारण झारखण्ड सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक जीवन की जानकारी रखती थीं साथ ही छोटानागपुर के भौगोलिकता की भी जानकारी थी। रोज केरकेट्टा की प्रकाशित हिन्दी किताबे हैं – खड़िया लोक कथाओं का साहित्यिक और सांस्कृतिक अध्ययन (शोध ग्रंथ), प्यारा मास्टर (जीवनी), पगहा जोरी-जोरी रे घाटो (हिन्दी कहानी संग्रह), अबसिब मुरडअ (पहली बारिश – कविता संग्रह), स्त्री महागाथा की महज एक पंक्ति (निबंध संग्रह), बिरूवार गमछा तथा अन्य कहानियाँ (हिन्दी कहानी संग्रह), सूर्योदय (नाटक)।

प्रसिद्ध सांस्कृतिक अगुवा डॉ. रोज केरकेट्टा को अपने परिवार से पढ़ाई और लड़ाई का संस्कार मिला। रोज केरकेट्टा ने 'प्यारा मास्टर' जीवनी लिखा है जो 2005 ई॰ में प्रकाशित हुई। जुझारू पुरखा आंदोलनकारियों, सामाजिक परिवर्तन में नेतृत्वकारी भूमिका में रहने वालों के जीवन संघर्ष से अवगत होना आवश्यक है। जीवनी की भाषा सहज और जीवन्त है जो पाठक को प्रारंभ से अंत तक जोड़े रखती है।

डॉ. रोज केरकेट्टा का हिन्दी नाटक सूर्योदय है जो मार्च 2022 में प्रकाशित हुआ है। इस नाटक के जरिए डॉ. रोज केरकेट्टा ने समाज में जागृति फैलाने वाले अपने पिता प्यारा केरकेट्टा को समर्पित किया है। इस नाटक में पुरूष पात्र हैं – बंधना, मांगता, बिरसा, राम, एक बुढ़ा,

असमिया बुढ़ा और छोटा लड़का। स्त्री पात्रों में प्रमुख पात्र हैं – रतनी, सुखमनी और सिलो। सूर्योदय रोज केरकेट्टा का छोटा परन्तु महत्वपूर्ण नाटक है। नाटक का उद्देश्य भी महत्वपूर्ण है। संवाद सरल है पर इसमें गहरी अर्थवत्ता है। ग्रामीण क्षेत्रों में खेत बंधक करने एवं सामाजिक बुराईयों के कारणों की भी पड़ताल की गई है।

रोज केरकेट्टा का पहला काव्य, संकलन है – अवसिब मुरडअ अर्थात 'पहली बारिश'। मूलतः खड़िया में लिखी कविताओं का कवयित्री ने शाब्दिक हिन्दी अनुवाद भी प्रस्तुत किया है। वे 'पहली बारिश' के निवेदन में स्वीकार करती हैं – 'ये कविताएँ ऊँची उड़ान नहीं भरती। परन्तु, युवावस्था में प्रत्येक व्यक्ति कुछ सपने देखता है, कुछ आदर्श पालता है। वे कुछ हद तक इन कविताओं में झलकते हैं। शायद कुछ हद तक मेरी विचारधारा भी दिख जाए।'

'अबसिब मुरडअ' अर्थात 'पहली बारिश' कविता संग्रह में कुल 123 कविताएँ संकलित है। यह काव्य संग्रह प्यारा केरकेट्टा फाउण्डेशन द्वारा 2010 में पहली बार प्रकाशित किया गया था। रोज केरकेट्टा की कविताओं से गुजरते हुए ज्ञात होता है कि सजग और समर्थ कथाकार के भीतर इतनी संवेदनशील कवयित्री का भी वास है।

'मचान के नीचे' कविता महाजनी सभ्यता के दृश्य को उजागर करता है। 'मछली केला घाघ की' कविता छल से बांध बनाकर सिमडेगा के ग्यारह मौजा के लोगों को भूमिहीन बनाने की गाथा है। 'कामू' (काम) और 'साथ हो' कविता किसानों के जीवन पर आधारित है। रोपनी के बाद स्त्रियाँ कहती हैं कि अब हमने बिचड़े धरती माँ की गोद में डाल दिया है। हल चलाने वाले कहते कि हमने धरती माँ को सपने सौंप दिये हैं। पांडुरंग पत्ते कविता में प्रकृति सिखाती है कि पतझड़ अंत नहीं होता। नवपल्लव के विकसित होने के लिए पतझड़ आवश्यक है।

डॉ. रोज केरकेट्टा के आलेखों का संग्रह है – 'स्त्री महागाथा की महज एक पंक्ति' जो 2014 में प्रकाशित हुआ था। इस संकलन में 14 लेख स्त्री समाज पर केन्द्रित है। झारखण्ड केन्द्रित लेखों में झारखण्ड की संस्कृति, भाषाई विविधता, राजनीतिक समीकरण और आदिवासी, सदान एवं दिकू के आपसी अंतर्सम्बंधों के कई जटिल रिश्ते अपनी सहजता के साथ अभिव्यक्त हुए हैं। उनके लेखों को पढ़कर आदिवासी जीवन की समग्रता से परिचित हुआ जा सकता है। उन्होंने झारखण्ड आंदोलन, उसके सांस्कृतिक पड़ाव, सत्ता संस्कृति में आदिवासी और स्त्री क्षेत्रीय साहित्य, झारखण्डी आदिवासी लोक जीवन और झारखण्ड में बाहरी भीतरी का सवाल आदि कई महत्वपूर्ण बिंदुओं पर बात की है।

डॉ. रोज केरकेट्टा का शोध प्रबंध खड़िया लोककथाओं का साहित्यिक अध्ययन है जो 2006 में प्रकाशित हुआ है। इस पुस्तक के बारे डॉ. दिनेश्वर प्रसाद लिखते हैं – 'खड़िया लोक कथाओं का साहित्यिक और सांस्कृतिक अध्ययन' अपने विषय से संबंधित प्रथम, मौलिक और प्रमाणिक शोध कार्य है। इससे खड़िया जनजाति की मौखिक साहित्य सम्पदा और संस्कृति संबंधी ज्ञान का विस्तार होता है, तथा खड़िया संबंधी नए शोध कार्यों की संभावना भी उद्घटित होती है।' इस शोध कार्य के लिए लेखिका को तात्कालीन बिहार, उड़ीसा, बंगाल के खड़िया इलाकों तक जाना पड़ा था। इस किताब को पढ़ने से मेरी कई जिज्ञासाएं शांत हुई।

कथाकार के पास छोटानागपुर का परिवेश है, उनकी अपनी भाषा है, साथ ही देशज मुहावरे भी। ''बाप रे भौजी, तुम्हारी बेटी तो कचनार फूल की तरह सांचे में ढली हुई होगी। तुम्हारे गोशाले को भर देगी।'' झारखण्ड में बेटियों के जन्म को गोहार भरने के साथ जोड़ा जाता है। कन्या भ्रूण हत्या, ऑनर किलिंग से अछूते हैं आदिवासी समुदाय। तथाकथित सभ्य समाज से कहीं अधिक सभ्य इन्सान।

झारखण्ड की कृषि संस्कृति में श्रम के साथ गीतों का महत्व है। स्त्री महागाथा की महज एक पंक्ति में एक गीत है जिसे पहाड़ों की तराई में धान रोपने वाली स्त्रियाँ गा रही है – 'रायचुनी धान दइया, रायचुनी धान रे/खुदी-चुनी भेल रे/हायरे दइया चुल्हक लुठी पीठे पड़ी गेल रे'।

इस गीत के बारे में वे लिखती है कि यह डमकच राग में गाया जाता है जो महज एक पंक्ति में समा गया है। सुगंधित भात खाने की आस में बैठे व्यक्ति ने उम्मीद पर पानी फिरते देख चूल्हे की जलती लुकाठी पीठ पर दे मारी। यहाँ पर सजग सचेतन लेखिका रोज केरकेट्टा लिखती हैं कि गीत की दूसरी कड़ी लाकर जोड़ना होगा। वे सिर्फ दूसरों के लिए हीं नहीं बल्कि अपने लिए भी जी सके ताकि उन्हें सामाजिक, राजनीतिक स्वतंत्रता मिल सके। एक लेखिका एक्टिविस्ट होने के कारण वे स्त्रियों के पक्ष में हमेशा खड़ी रही हैं।

रोज केरकेट्टा की कहानियों का प्रथम संग्रह 2009 में 'पगहा जोरी जोरी रे घाटो' प्रकाशित हुआ था। इस कहानी संग्रह की अनेक कहानियाँ जैसे – भंवर, घाना लोहार का, छोटी बहू, गंध, आंचल का टुकड़ा, मैना, दुनिया रंग-रंगीली बाबा, पगहा जोरी-जोरी रे घाटो आदि कहानियाँ कथाकार की मौलिक कहानियाँ हैं। वे आदिवासी समाज की विशिष्ट संरचना को पहचानती हैं। साथ ही गैर आदिवासी समाज की भिन्नता को भी पहचानती हैं। कथाकार आदिवासियों के समाज के भीतर पाठकों को ले जाने में सफल होती हैं। उनके खान-पान, परिधान, आजीविका, सपनों, आकांक्षाओं, श्रम उमंग आधारित जीवन के इर्द गिर्द कहानी का ताना और बाना बुनती हैं।

'फिक्स डिपोजिट' कहानी बड़े बांध परियोजना, जलाशय के कारण विस्थापन, पलायन की पीड़ा को दर्ज

करती है। दामोदर वेली कॉरपोरेशन, चांडिल बांध परियोजना छिन्दा जलाशय आदि के विस्थापित परिवारों का समुच्चय उपस्थित हो उठता है। कहानी की महत्ता इसलिए भी है क्योंकि इस कहानी में आदिवासी जीवन मूल्यों की दो विशेषताओं सहयोगिता और सामूहिकता का ह्रास और व्यक्तिवादिता के प्रति आग्रह है। कहानी में मनोहर दा का बेटा मुआवजा के पैसे से सिर्फ अपना हित चाहता है। इस कहानी का अंत मनोहर दा की मृत्यु से होता है, जो परिवार अपनी जमीन, जंगल और नदी के परिवेश में सुखपूर्वक जीवन बिता रहा था वह परियोजना के कारण बिखर जाता है। इस कहानी में एक नयी कहानी की संभावना भी है। भाई के दुतकारे जाने पर वह महानगर की ओर जाती है। बांध परियोजनाओं के कारण विस्थापित परिवारों का दर्द मर्माहत करता है। रोज केरकेट्टा की कहानियों में कथानक के अंतर्गत घटनाओं का प्रवाह शंख, कोयलकारो, कांची नदियों के पानी की तरह है।

'बिरूवार गमछा' कथाकार की अद्भुत कहानी है जो आदिवासी क्षेत्रों के स्वावलम्बन के छीनते-टूटते जाने की कथा कहता है। कारीगर जनजातियाँ अपने हुनर के स्थानीय और राजकीय संरक्षण के अभाव में पंजाब के खेतों, बंगाल, असम के चाय बागानों, अंडमान के जंगलों और महानगरों की सीमा पर स्थित ईंट-भट्ठों में अमानवीय परिस्थितियों में जीने-खटने के लिए मजबूर हैं, चीक बड़ाईक आदिवासी समुदाय के बेहद कलात्मक बुनकरी जो प्रदेश की सांस्कृतिक पहचान में बेहद अहम् स्थान रखती है। पड़िया, गमछा, बरकी, पेछौरी, चीक बड़ाईक समुदाय से छोटा नागपुर के खड़िया, उराँव और मुण्डा जैसे बड़े आदिवासी समुदाय प्राप्त करते थे। 'बड़ा आदमी' और 'बिरूवार गमछा' कहानी से गुजरते हुए पाठक यह जानते हैं कि झारखण्ड में भी कपास की खेती होती थी। सूत निकाला जाता था और करघा लुंडरी की सहायता से पड़िया, गमछा, करया, बरकी, पिछौरी (ओढ़ने-बिछाने का कपड़ा) बुना जाता था। इस क्षेत्र के लोग औद्योगीकरण के पूर्व इन्हीं कपड़ों को पहनते थे। परंतु अब स्थिति क्या है? जमीन के अभाव में पूरी कारीगर जनजातियाँ भूमिहीन मजदूर बन गई है। शहरों, चाय बागानों और पंजाब के फॉर्म हाउसों की ओर पिछली सदियों से निरंतर पलायन हो रहा है। कहानी और पात्रों की जीवन परिस्थितियों से मैं स्वयं को जुड़ा हुआ पाती हूँ। मेरे नाना का परिवार बुनकरी की विशिष्ट परम्परा से अब दूर हो चुका है। उन कारणों की पड़ताल करती ये कहानी झारखण्ड के शिल्पी कलावंत जनजातियों को समर्पित है। गुजरात में उत्पन्न सांप्रदायिकता के कारण दूसरे राज्यों के लोग किस जीवन स्थिति में रहने के लिए बाध्य होते हैं और बिरूवार गमछा के कारण अपनी जान बचा पाते हैं, इसका अच्छा वर्णन किया है।

हमारे चीक बड़ाईक समुदाय के लिए उन्होंने जो सबसे बड़ा और महत्वपूर्ण काम किया वह है बिरूवार गमछा कहानी। उन्होंने हमारे समुदाय के पाम्परिक करघा लुंडरीकी बुनकरी को सम्मान देते हुए आदि ज्ञान परम्परा और शिल्प को सम्मान देकर बिरूवार गमछा और बड़ा आदमी जैसी कहानियाँ लिखीं। बिरूवार गमछा का जब लोर्कापण किया गया तो मुझे वरिष्ठ आदिवासी कथाकार शिशिर टुडू और पीटर पॉल एक्का के साथ उस किताब को लोर्कापण करने का मौका मिला। यह मेरे लिए बहुत यादगार पल है जिसे मैं भूल नहीं पाऊंगी। बिरूवार गमछा का विषय इतना गंभीर

और विस्तृत है कि उसपर उपन्यास लिखा जा सकता है। डॉ. रोज केरकेट्टा ने सिर्फ इन कहानियों के माध्यम से नहीं बल्कि 'निवेदन' कविता के जरिये भी हमारे समुदाय से लगाव रखा। इतना हीं नहीं स्त्री महागाथा की महज एक पंक्ति में भी झारखण्ड समरसता लेख में उन्होंने झारखण्ड के शिल्पी आदिवासियों को याद किया है – ये जो किसानों के साथ शिल्पी थे, वे किसानों के साथ ग्रामीण रिश्तेदारी निभाते थे। आपस में सम्मान और आदरपूर्वक जीवन-यापन होता था। किसान उनके हर काम के बदले अनाज देता था। अनाज देने के लिए तुरी खड़ियाही डाली (20-30 सेर अनाज समाने वाली टोकरी) और ढारा डाली (50-60 सेर वाला) बनाते थे। साधारण लेन-देन के लिए नापने के वास्ते पैला होता था, किन्तु शिल्पियों को और धांगरों को ढेर में से सीधे अनाज उठाकर तयशुदा अनाज दिया जाता था।

रोज केरकेट्टा की कहानियों में प्रायः एक ही घटना पायी जाती है। उनकी कहानियों में बिखराव कम से कम होता है, जिस प्रकार ढेंकी में धान कूटने के दौरान चावल कम से कम बिखरते हैं। कहानी के पात्रों में जंगल के पेड़ों, पक्षियों के समान विविधता है। मैंने रोज केरकेट्टा की दो दर्जन से ऊपर कहानियाँ पढ़ी हैं। रोज केरकेट्टा निश्चित रूप से हिन्दी की वरिष्ठ कथाकार हैं जिनकी कम से कम एक दर्जन कहानियाँ अपनी अन्तर्वस्तु, कथ्य और पात्रों के कारण हिन्दी साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान बनाने में सक्षम हैं।

कथाकार ने अपनी कहानियों में भाषा के दो-तीन रूपों का अधिक प्रयोग किया है। उन्होंने आदिवासी क्षेत्र के वर्णन के लिए देशज शब्दों का प्रयोग किया है। तद्भव और तत्सम शब्दों का भी यथास्थान प्रयोग है। कहानी की भाषा अर्थ ग्रहण करने में अधिकांशतः सक्षम है। हालांकि कुछ देशज शब्द आदिवासी क्षेत्र से अनजान लोगों के लिए कठिन हो सकते हैं।

डॉ. रोज केरकेट्टा 2005 से 'आधी दुनिया' पत्रिका की संपादक रही हैं। यह पत्रिका महत्वपूर्ण इस अर्थ में है क्योंकि यह पिछले 31 वर्षों से विभिन्न विषयों पर मसलन स्त्री शिक्षा, ग्राम सभा और महिला भागीदारी, महिला किसान, अभियान बनाम आंदोलन आदि विषयों पर केंद्रित होकर लगातार प्रकाशित हो रही है।

उन्होंने इस साक्षात्कार में बहुत आत्मीयता से अपने जीवन संघर्ष, पढ़ाई और झारखण्ड आंदोलन आदिवासी साहित्य, अपने कहानियों के बारे में बहुत सी बातें एवं अनुभव साझा किया।

रोज केरकेट्टा को मैं फुआ बोलती थी। उनसे जब भी मिलना होता था बहुत आत्मीयता से बातचीत होती थी महुआ की मिठास और पोषण से भरपूर। हमारी बातचीत में सिमडेगा जरूर रहता था। सिमडेगा के शंख नदी के किनारे उनका जन्म स्थान है। सिमडेगा के गरजा पहाड़ के पास के गांव में उनकी ससुराल है। वह अध्यापन के सिलसिले में कोयल नदी के पास सिसई (गुमला) आती है और अंततः स्वर्णरेखा नदी के क्षेत्र राँची में अपना अध्यापन का कार्यकाल पूरा करती है। उनके कर्मक्षेत्र में स्थानीयता के साथ राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दे भी शामिल रहते थे। मुझे यह बात कचोटती रहेगी कि मुझे कुछ साल और पहले उनसे मिलना था और उनके अनुभव और लेखन से परिचित होना था।

स्त्री अधिकारों की पक्षधर और सामाजिक आंदोलनों की प्रतीक रही डॉ. रोज केरकेट्टा को अंतिम विदाई देने के लिए राँची और उसके आसपास के हर जाति और धर्म के लोग, लेखक, पत्रकार, सामाजिक कार्यकर्त्ता, प्रशासक, सामान्य लोग आये थे और नेतरहाट से असुर भी। अंतिम संस्कार की कार्यवाही एक महिला पादरी के द्वारा की गई और खड़िया भाषा में गीत गाये गये। डॉ. रोज केरकेट्टा आंदोलन, जीवन और लेखन में भी गीतों के महत्व को समझती थी और गीतों के प्रयोग को आवश्यक मानती थी।

मैं इस आलेख का समापन इस गीत से करना चाहूँगी जो रोज फूआ के प्रकृति, नियति और लोकगीत आलेख में है – 'हाय रे गूलर/तुम स्वयं टपक गए।/पकने को तो तुम पके/(और) रात को स्वयं टपक गए।' और फिर उनके ही शब्दों को याद करना चाहूंगी – ''इंसान का जन्म लेना, उत्पन्न होना ही प्रकाश है और मृत्यु घोर रात्रि। इसलिए अंततः जीवन के उजाले पर काली रात की जीत होती है। हम उस कालरात्रि का भी नमन करते हैं।'' ■

रोज दी : एक सखा, एक संघर्षशील साथी

मालंच घोष

रोज दी से मेरा संपर्क 44 वर्षों का है। सन् 1981 में जब रांची में ट्राईबल एवं क्षेत्रीय भाषा विभाग खुला तभी रोज दी डाल्टनगंज से रांची आयी। वह डाल्टनगंज में हिन्दी भाषा की प्रोफेसर थी पर जनजाति क्षेत्रीय भाषा का विभाग खुलने पर वह यहां खड़िया भाषा की प्रोफेसर नियुक्त की गयी। उसी समय अन्य भाषा के प्रोफेसर की भी नियुक्ति हुई। बी.पी. केसरी नागपुरी के तथा रामदयाल मुंडा मुंडारी के प्रोफेसर बने। उन दिनों वीर भारत तलवार जो जेएनयू में प्रोफेसर थे, वे 'साल पत्र' नामक एक पत्रिका निकालते थे। झारखंड में वह किसी प्रोजेक्ट में काम कर रहे थे। वीर भारत तलवार से मिलने मैं और घोष जी रोज दी के घर पहुंचे। रोज दी उस समय बरियातु मेडिकल कॉलेज के पीछे रहती थी। छोटा सा मिट्टी का घर था। अपने दो बच्चों वंदना एवं सोनल के साथ वह वहां रहती थी। उनके साथ यह मेरी पहली मुलाकात थी। धीरे-धीरे मुलाकतें बढ़ने लगीं। विभाग में कोई कार्यक्रम चाहे वह सरहुल हो या करमा, जब भी आयोजन किया जाता मैं उसमें जरूर जाती और वहां रोज दी से भेंट हो जाती थी। धीरे-धीरे हमारी मुलाकतें बढ़ने लगीं और एक रिश्ता सा बन गया। जब भी हम मिलते, देश दुनिया की बातों के साथ-साथ महिलाओं के मुद्दे पर भी बातें होतीं। हमारा जो रिश्ता बना, उस रिश्ते की डोर विश्वास थी। हम दोनों को एक दूसरे पर बहुत विश्वास था और अन्य बातों के साथ-साथ निजी बातें भी एक दूसरे से शेयर करते थे। मदद चाहिए होती तो हम दोनों एक दूसरे से बेझिझक मांग लेते। उस समय मैं भी नगड़ाटोली में किराये के मकान में रहती थी। हम दोनों एक दूसरे के घर आते जाते रहते थे। इससे हम दोनों की मित्रता और भी प्रगाढ़ होती चली गई। सन् 1983 की जनवरी की लोअर बाजार थाना की एक घटना है। तीन लड़कियों (नाम नहीं दे रही हूं) के साथ एक थानेदार एवं दो कांस्टेबल ने मिलकर गैंप रेप किया। लड़कियां डर गयीं, जख्मी भी हुईं। सदमें से एक लड़की ने घर जाकर केरोसीन तेल डालकर आत्महत्या कर ली। इस घटना से हम दोनों काफी व्यथित हुए। मैं उस समय आई. पी.एफ. में थी। घटना की छानबीन की। यह घटना अखबार में भी आयी। चूंकि छात्रायें उर्सुलाईन कॉन्वेन्ट में पढ़ती थीं, इसलिए स्कूल एवं कांटाटोली बस्ती के लोगों ने घटना के विरोध में मोमबत्ती जुलूस निकाला। बहुत बुलाने के बाद भी रैली में लोग नहीं आये। केवल हम तीन - डॉ. उषा सक्सेना, अंजली घोष और मैं शामिल हुईं। रैली के बाद नागरिक मंच बनाकर कॉलेजों में संपर्क किया गया। एक बैठक की गयी और बैठक में निर्णय लिया गया कि जब तक अपराधी पकड़ा नहीं जाता, तब तक डीसी ऑफिस के सामने धरना दिया जायेगा। रोज दी हर रोज धरने में शामिल हुई। हर रोज धरना दिया जाने लगा। इसके बाद जब हमलोगों का संगठन महिला उत्पीड़न विरोधी एवं विकास समिति बना, रोज दी संगठनों के हर कार्यक्रम में भाग लेती रहीं। 1992 में जब बिहार एजुकेशन प्रोजेक्ट शुरु हुआ तो मैं और रोज दी दोनों उससे जुड़ी। मैं ईसीसीई तथा रोज दी महिला समाख्या का काम देखने लगीं। महिला समाख्या में जुड़ने के लिए मैंने ही रोज दी का नाम प्रस्तावित किया, क्योंकि वो कई भाषायें जानती थीं। उनके घर जाकर उन्हें भी मनाया कि रोज दी झारखंड के लिए आपको आगे आना होगा। 1992 से लगातार कई वर्षों तक हमने साथ मिलकर काम किया। फिर अपने-अपने कॉलेज में वापस आ गयीं। 'छठा नारी मुक्ति संघर्ष सम्मेलन', जो 1997 में रांची में आयोजित हुआ, उसके आयोजन समिति में रोज दी के नेतृत्व में काम किया। 'नावो' झारखंड जब बना, तब भी हम दोनों ने साथ मिलकर बहुत काम किया। कई केसों की छानबीन कीं, रिपोर्ट तैयार की। आज जब रोज दी नहीं रहीं, तो अपने को बहुत अकेला महसूस कर रही हूं। रोज दी का जाना परिवार के लिए तो क्षति है ही, सामाजिक जगत के लिए भी अपूरणीय क्षति है। संघर्ष के साथी का चले जाना मन को इतना व्यथित कर देता है कि उसे शब्दों में बयां नहीं किया जा सकता। ■

शिक्षा की जोत डॉ. रोज

डॉ. शांति खलखो

महिलाओं की जोत जलाने वाली वह कर्मठ महिला... हाँ... हाँ, मैं वही रोज दी की बात कर रही हूं, जिन्होंने महिलाओं से जुड़े हर मुद्दे को उठाया था। अपने प्रदेश में, अपने देश में और विदेशों में भी।

हाँ, वो मेरी शिक्षिका रहीं। इस नाते मैं उन्हें दीदी कहती थी पर मन के किसी कोने में उनका स्थान एक माँ का था। बचपन में माँ को खोया। मन का एक कोना माँ के लिए हमेशा खाली रहा। वंदना के साथ काम करते हुए मैं रोज दी के और करीब आने लगी थी और माँ के लिए वह खाली स्थान अब रोज दी के लिए अहसास होने लगा। उनसे पढ़ते वक्त हमेशा 'दी' का सम्बोधन रहा जो चाहकर भी कभी माँ नहीं बोल सकी। इसका मलाल हमेशा रहेगा।

1987-89 मेरा बैच था, पर सेशन लेट था जिस कारण 89 में क्लास शुरु हुआ था। कॉमर्स की छात्रा थी मैं। सो शुरु में हिन्दी साहित्य, भारतीय साहित्य पढ़ना बहुत मुश्किल लगता था। हम सभी छात्र छात्राएं अपने रूटीन के अनुसार समय पर पहुँच जाया करते थे पर कुछ छात्र लापरवाह थे। वे देर से आते थे। ऐसे में कई बार हमारे शिक्षक भी विद्यार्थियों का इंतजार करते थे। कभी-कभी हमलोगों को कुछ अधिक ही बैठना पड़ जाता था। ऐसे में मन ऊब जाता था। तब हमलोग एक दूसरे से कहते थे – ''जाओ न बुला लाओ जिनका भी क्लास होता था उन सर या मैडम को।'' उस समय जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषा विभाग में दो ही मैडम थी। एक डॉ. रोज केरकेट्टा और दूसरी डॉ. कुमारी बासन्ती। सभी विद्यार्थी एक दूसरे को – 'तुम जाओ, तुम जाओ' कहकर ठेला-ठेली करते थे। ऐसी स्थिति में मुझे ही जाना पड़ता था। चूंकि मैं घर में बच्चों को छोड़कर जाती थी तो जल्दी से क्लास खत्म करके घर लौटना चाहती थी।

शिक्षकों का पूरा ग्रुप बाहर अखड़ा में बैठा होता था। जैसे ही मैं शिक्षकों के करीब आती, मेरे कुछ बोलने से पहले डॉ. रोज दी और डॉ. एच. एन. सिंह एक दूसरे से कहते – 'जाइये आपका बुलावा आ गया' और सभी खूब हँसते थे। यह प्रत्येक दिन का किस्सा होता और सभी ठहाका लगाते।

रोज दी का क्लास भारतीय साहित्य हम सब कभी नहीं छोड़ते थे। साहित्य की दुनिया इतनी विशाल है, वृहत है ये मेरी जानकारी में नहीं थी। तब दो वर्षों का एम. ए. होता था। दूसरा साल आते-आते मेरी रुचि साहित्य पर आ चुकी थी। फिर रोज दी से भी मेरी बातचीत बढ़ गई थी।

एम. ए. कर थीसिस लिखते समय मुझे पता चला कि रोज दी ने प्रेमचन्द की दस कहानियों का खड़िया में अनुवाद किया है। मैंने इस संबंध में रोज दी से बात की। रोज दी ने खुश होते हुए मुझसे कहा – ''हाँ शान्ति, मैं तुमसे इस विषय पर बात करने ही वाली थी। तुम भी प्रेमचन्द की दस कहानियों का कुड़ुख में अनुवाद करो। तुम्हें कौन सी कहानियाँ पसन्द है तुम देख लेना पर इस विषय को लेकर डॉ. दिनेश्वर प्रसाद से एक बार अवश्य मिल लेना।'' मैं खुश हो गई। बहुत उत्साहित थी। इसलिए कि रोज दी ने भी प्रेमचन्द की दस कहानियों का खड़िया में अनुवाद किया है और मुझे भी यह मौका मिल रहा है। रोज दी ने ये बात मुझसे कहा, यह मेरे लिए खुशी की बात थी। रोज दी के कहे अनुसार मैं डॉ. दिनेश्वर प्रसाद से मिली और अपना परिचय देते हुए रोज दी से हुई सारी बातें बताई। डॉ. दिनेश्वर सर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने तुरन्त ही प्रेमचन्द की दस कहानियों का चयन करके मुझे दे दिया। इसी बीच उन्होंने हम दोनों को चाय भी पिलाया। गुरु जी के यहाँ चाय पीना भी मेरे लिए बड़ी बात है। मेरे पति महोदय भी बहुत खुश हुए। हम दोनों खुशी-खुशी घर लौटे। रोज दी की प्रेरणा

पाकर जितनी खुशी-खुशी, उत्साहित हो मैं डॉ. दिनेश्वर प्रसाद से मिली पर अपने उस महत्वपूर्ण काम को पूरा नहीं कर सकी हूं। उसका मुझे बहुत दुख है। आज रोज दी इस दुनिया में नहीं है। उन्हें श्रद्धांजलि दे रही हूँ पर उनके बताये कामों को पूरा नहीं कर सकी हूं। भला यह कैसी श्रद्धांजलि है?

एक बार विभाग के वरिष्ठ शिक्षकों के साथ मैसूर जाने का सुनहरा मौका मिला। हम सभी जनजातीय भाषा के शिक्षक और मैं फोनेटिक ट्रेनिंग के लिए मैसूर जा रहे थे। डॉ. रोज दी खड़िया से, प्रो. अमिता दी और प्रो. सी.बी. नाग मुण्डारी से, डॉ. के. सी. टुडू और गणेश मुर्मू संताली से, प्रो. बी पी. पिंगुआ हो से और कुड़ुख से मैं थी। किसी कारणवश प्रो. इन्द्रजीत सर नहीं गये थे।

अपने वरिष्ठ प्रोफेसरों के बीच मैं सबसे छोटी थी। उम्र में भी, पढ़ाई में भी, डिग्री में भी। इस तीन दिन के सफर में मैं चुप-चुप सी, संकुचित मन से सफर कर रही थी। अपने जीवन में इतनी लम्बी यात्रा पहले कभी नहीं की थी। ये तो और भी महत्वपूर्ण यात्रा थी, क्योंकि हम सब घूमने नहीं, बल्कि फोनेटिक ट्रेनिंग के लिए जा रहे थे। खैर हमलोग मैसूर मानसगंगोत्री पहुंचे। यहीं पर 'सेन्ट्रल इंस्टीच्युट ऑफ इन्डियन लॉग्वेजेग' मैसूर, भारतीय भाषाओं का बहुत बड़ा केन्द्र है। हमारे रहने खाने का पूरा इंतजाम इंस्टीच्यूट के हॉस्टल में हो गया। दूसरे दिन से हमारा ट्रेनिंग शुरु होनेवाला था। मेरा दिल धड़क रहा था। मैं अभी ध्वनि विज्ञान/फोनेटिक के बारे में कुछ भी नहीं जानती थी। मैं बहुत डर रही थी कि कल मैं क्लास में क्या करूंगी। मेरी मातृभाषा कुड़ुख से और कोई भी नहीं आया था।

इन्द्रजीत सर होते तो मुझे सहूलियत होती। ट्रेनिंग में आने का मेरा सारा उत्साह डर में बदल रहा था। इंस्टीच्यूट का पूरा माहौल कन्नड़ और इंग्लिश का था और वे दोनों भाषा मैं नहीं जानती थी। बोलचाल की भाषा से किसी तरह काम चला लेती पर आगे दूसरे दिन सुबह में जल्दी से तैयार होकर रोज दी के कमरे में पहुंची। समय के अनुसार उनके साथ ट्रेनिंग वाले क्लास रूम में पहुंचे। पूरे इंस्टीच्यूट बिल्डिंग की भव्यता, रख रखाव सभी कुछ पढ़ने-पढ़ाने का सलीका और स्टेन्डर्ड को बयाँ कर रहे थे। जैसे-जैसे क्लास का समय नजदीक आ रहा था वैसे-वैसे मेरे दिल की धड़कन तेज हो रही थी। मैं रोज दीदी से चिपकी रही। मैंने रोज दी से कहा – ''दीदी ! मुझे भी बताइयेगा क्या-क्या काम करना है, कैसे करना है? मैं कुछ भी नहीं जानती हूं यानि विज्ञान के बारे में।'' मुझे इस तरह से डरा सहमा सा देखकर रोज दी ने मेरा साहस बढ़ाया। उन्होंने मुझसे कहा – ''शान्ति तुम डरो नहीं। अपनी मातृभाषा के ध्वनि के बारे हम सभी थोड़ी जानकारी रखते ही हैं। जितना तुम कुड़ुख के बारे में जानती हो, उतना ही मैं भी खड़िया के बारे में जानती हूं। इत्मीनान रहो। हमारे राँची विश्वविद्यालय में भाषा विज्ञान की पढ़ाई नहीं होती है। इसलिए भाषा वैज्ञानिक जरिये से ध्वनि विज्ञान में हम सब जीरो हैं। हम सभी कोई यहाँ पर इस ट्रेनिंग सेन्टर में शुरू से ही सीखेंगे।'' कहते हुए रोज दी ने मेरी कंधों में हाथ रखा। रोज दीदी की ढांढस भरी बातें सुनकर मुझे थोड़ी हिम्मत हुई और मैं थोड़ी सामान्य भी हुई।

हाल के वर्षों में मैं अपने पति के साथ रोज दी से मिलने गई थी। रोज दी बेड पर थी। उनकी आवाज में थोड़ी कम्पन थी, सो मैं पूरी बातें समझ नहीं पा रही थी। हमारे बीच काफी बातें हुई अब मैं लौटना चाहती थी। मुझे और एक जगह जाना था पर रोज दी का प्यार भरा ये कहना – ''बैठो न थोड़ी देर और कहाँ जाना है? कोई नहीं बैठता है मेरे पास''। दीदी की ये प्यार भरे आग्रह को हम दोनों टाल भी नहीं सके और बैठ गये। उनका खाने का एक निश्चित समय था तो हमें वहाँ से निकलना पड़ा पर विदाई लेने में बहुत मशक्कत करनी पड़ी।

डॉ. रोज दी से सीखे हुए, बिताए हुए समय, क्षण को भूलना संभव नहीं है। हाँ, समय के साथ कुछ लिखना पढ़ना जरूर सीख गई हूं, जो डॉ. रोज दी एवं डॉ. एच. एन. सिंह मेरे गाइड की देन है। इनका कर्ज मैं कभी नहीं चुका सकती।

रोज दी को श्रद्धा सुमन अर्पित करते हुए उन्हें शत् शत् नमन! ■

साहित्य, समाज और संघर्ष की प्रतीक : रोज केरकेट्टा

कुमुद

रोज केरकेट्टा उनका नाम जेहन में आते ही एक सौम्य मुस्कान वाली विदुषी महिला की तस्वीर उभर आती है। अपने वक्तव्य में दृढ़ता पर चेहरे पर सौम्यता चाहे आदिवासी मुद्दा हो या साहित्यिक, शिक्षा हो या यौन उत्पीड़न की समस्या या प्रशिक्षण जहां गई अपने ज्ञान और दृढ़ता से बात रखने वाली महिलाओं का प्रतिनिधित्व किया। झारखंड आंदोलन के दौरान झारखंड समन्वय समिति में डॉक्टर रामदयाल मुंडा, डॉक्टर बीपी केसरी, संजय बसु मल्लिक, प्रभाकर तिर्की, सूरज सिंह बेसरा, डॉक्टर देवशरण भगत के साथ राजनीति और गैर राजनीतिक मुद्दों पर उनकी बातें सलाह सुनी जाती थी और मानी भी जाती थी।

मैं 1984 में नौकरी के सिलसिले में रांची आई यहां का माहौल, यहां की संस्कृति, पटना की संस्कृति से थोड़ा अलग था। बिहार आंदोलन से जुड़े होने के कारण सामाजिक विषयों पर काम करने की आदत बनी हुई थी। यहां आकर किससे संपर्क करूं यह समझ नहीं पा रही थी। इसी समय निवेदिता कांड के विरोध में एक प्रदर्शन होने की जानकारी मिली। बिना किसी बुलावे के, बिना किसी परिचय के मैं उस कार्यक्रम में शामिल हो गई। वहीं रोज दी से परिचय हुआ। उन दिनों वे जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषा विभाग में कार्यरत थीं। मालंच घोष महिला कॉलेज में प्रोफेसर थीं, इनके साथ-साथ प्रभावती तिवारी, चायना मोइत्रा से भी भेंट हुई।

महिला मुद्दों पर कार्य करने वाली प्रभावशाली नेतृत्व देने की पहचान रोज दी बन चुकी थी। पूरे धैर्य से सबकी सुनना, चेहरे पर स्थाई मुस्कान, चश्मे से झांकती आंखें, सामान्य परिधान लेकिन ओजस्वी वक्तव्य की धनी वे थी। अनेक मुद्दों पर खासकर महिला, आदिवासी से लेकर मानवीय मूल्य की रक्षा के लिए उनके साथ काम करते संघर्ष करने का मौका मिला उनकी रचनाएं पढ़ने और सुनने का भी अवसर मिला।

मेरे लिए एवं मेरी बड़ी बहन कनक के लिए भी वह कभी मैडम नहीं रही। भले ही वो प्रोफेसर थीं, पर हमारा रिश्ता ऐसा जुड़ा की आरंभ से ही हम दोनों बहनों की बड़ी बहन बन गईं। वह इतनी स्नेहिल थीं कि आसानी से संघर्ष करने वाली महिलाओं को अपना बना लेती थीं।

आंदोलन की पहली शर्त शायद यही है कि साथियों के साथ सम्मानजनक और बराबरी का रिश्ता हो। वैसे भी वह उम्र में बड़ी बहन ही थीं। रांची और आसपास तिलक दहेज, यौन उत्पीड़न, यौन शोषण, छेड़खानी के अनेक मामलों में हम साथ मिलकर लड़े और उसे परिणाम तक पहुंचाने का सुखद अनुभव मिला। हां, उनसे 'दी' का रिश्ता बहुत तेजी से घर का भी रिश्ता बन गया। उनके यहां आने जाने का सिलसिला शुरू हुआ जो वर्षों तक कायम रहा।

वे मानती थीं कि आदिवासी समुदाय में महिलाओं को संपत्ति पर अधिकार नहीं होना सही नहीं है, क्योंकि इससे कई विसंगतियां उठती हैं। आदिवासी समाज में समानता का सिद्धांत भी महिलाओं को इसकी वजह से नहीं मिल पाता। पति के नहीं रहने पर उनके पटिदारों की कृपा पर निर्भर रहना पड़ता है। झारखंड बनने के शुरुआती वर्षों में महिलाओं को संपत्ति में अधिकार को लेकर जब बिटिया

मुर्मू ने सवाल उठाया तो उस सवाल की गूंज रांची तक पहुंची। इस मुद्दे पर भी कई दफा उनके साथ विमर्श हुआ।

रोज दी प्रौढ़ शिक्षा में मालंच जी के साथ समन्वयक की भूमिका में कॉलेज से आकर क्षेत्रीय विकास प्राधिकार रांची में बैठने लगीं। संघर्षशील महिलाओं को वहां बैठने का एक ठौर मिला। प्रौढ़ शिक्षा में अक्षर ज्ञान, हस्ताक्षर और पढ़ने लिखने के साथ-साथ महिलाओं, स्त्रियों के अधिकार पर भी विमर्श करने लगीं। उस समय प्राधिकार के उपाध्यक्ष थे अमरजीत सिन्हा, जिन्हें संघर्ष वाहिनी के सक्रिय साथियों के साथ गहरा लगाव था एवं सामाजिक काम करने वाले लोगों के प्रति एक सम्मान का भाव था। उन्होंने शिक्षा निदेशक के पद पर रहते हुए इस तरह के संघर्षशील विदुषी महिलाओं की खोज की थी और महिला मुद्दों को पठन-पाठन के साथ जोड़ा था।

राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय महिला सम्मेलनों में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका रही। रांची में महिला दिवस मनाने से लेकर महिला हिंसा विरोधी पखवाड़ा जैसे कार्यक्रमों में वह सक्रिय रूप से भाग लेती रहीं।

जब झारखंड राज्य बना तो सभी को लगा कि यहां की मूल समस्या विस्थापन, पलायन, बेरोजगारी इत्यादि पर अंकुश लगेगा। घरेलू काम के लिए बाहर जाने वाली आदिवासी महिलाएं अब अपने गांव में रहकर अपना रोजगार ढूंढ़ेगी। उन दिनों (बल्कि अभी भी) यहां की महिलाओं की पहचान घरेलू काम के लिए अच्छा समझा जाता था क्योंकि वह मेहनती ईमानदार और शांति प्रिय होती हैं। रोज केरकेट्टा एवं हमारे जैसी महिलाएं इस छवि को तोड़ना चाहती थीं। अफसोस है की यह समस्या अभी भी बरकरार है।

अंधविश्वास की समस्या खासकर डायन प्रथा के नाम पर होने वाले उत्पीड़न एवं हत्या से हम व्यथित हैं।

नए राज्य में महिला नीति बने, महिला की सुविधा के लिए महिला थाना हो एवं राज्य में महिला आयोग का गठन किया जाए, इसकी मांग को लेकर हम लोग विचार विमर्श किया करते थे। इसके लिए संघर्ष का रास्ता भी अपनाना पड़ा। जुलूस, प्रदर्शन, धरना के साथ-साथ राज्यपाल को स्मार पत्र देना, उनसे मिलना इत्यादि लंबी प्रक्रिया के बाद महिला आयोग का गठन हुआ। हमें उम्मीद थी कि रोज दी को ही अध्यक्ष पद के लिए आमंत्रित किया जाएगा, पर ऐसा नहीं हुआ। सामाजिक सरोकार रखने वालों को लगा कि सरकार ने एक अच्छा मौका खो दिया। हम मन मसोसकर रह गये।

पिछले कुछ सालों से वे सामाजिक कामों से कट गई थीं। पर इशारों से सब कुछ जानना चाहतीं थीं। उनका जाना सिर्फ उनके परिवार, सामाजिक कार्यकर्त्ताओं के लिए दुखदाई नहीं बल्कि पूरे राज्य के लिए अपूरणीय क्षति है। उनकी विरासत को बचाने, सहेजने की जरूरत और जिम्मेदारी हम सब पर है। ■

झारखंड में महिलाओं के सशक्तिकरण में डॉ. रोज केरकेट्टा का योगदान

किरण

आज रोज दी हमारे बीच सशरीर नहीं हैं, लेकिन उनकी मधुर स्मृतियाँ अभी भी हम सभी के मन-मस्तिष्क में पहले की तरह ही खिली हुई हैं। मुझे न केवल उनसे अपनी पहली मुलाक़ात याद है, बल्कि उनकी मृत्यु के कुछ दिन पहले उनके घर पर जाकर मिलने तक उनकी वो मधुर मुस्कान भी पूरी तरह से याद है। अंत समय तक उनकी स्मृति जागृत थी। वे कमजोर हो गई थीं, लेकिन पहचान करने की क्षमता बरकरार थीं। सुनाई कम देता था, लेकिन उनकी याददाश्त पूरी तरह सक्रिय थी। वैसे वे जब भी मुझे याद आती हैं, तो उनकी वही पहली मुलाकात वाली छवि दिल और दिमाग पर मौजूद रहती है। ऐसा लगता है, जैसे समय रुक गया हो या स्मृतियों में रोज दी स्थायी हो गई हों।

1985 के सितंबर महीने में मैं सीसीएल की अपनी नौकरी जॉइन करने के लिए पटना से रांची आई थी। आने के कुछ दिनों के बाद, कनक दी के साथ रोज दी से मिलने का मौका मिला था। पहली मुलाकात थी, बहुत कम बात हुई, ठीक से परिचय भी नहीं हुआ और मैं एक विदुषी, सहज और सरल महिला के प्रभाव में थीं। फिर सिलसिला शुरू हुआ था अंतरंगता के परिचय का, दोस्ती के विस्तार का, परिवार के सदस्यों के स्तर पर संबंध की प्रगाढ़ता का। जितनी बार मिलती एक अलग ही रोज दी से मुलाकात होती। कभी कर्मठ सामाजिक कार्यकर्ता से भेंट होती तो कभी राजनीतिक विचारों के ज्ञान से भरपूर व्यक्तित्व से। कभी कवयित्री, तो कभी लेखिका, कभी कहानीकार तो कभी साहित्यकार। कभी शिक्षिका तो कभी माँ तो कभी दीदी भी। उनके एक व्यक्तित्व में कई - कई व्यक्तित्व का समावेश दिखाई देता था। जब भी वे मिली मैंने यह पाया कि जितनी

वे सामाजिक, राजनीतिक स्तर पर सक्रिय थीं, उतनी ही वे हम सभी के बीच अर्थात अपने मित्रों, घर, परिवार में भी रमी रहती थीं। वे जहां कहीं भी जाती लोगों को अपने प्रभाव में ले लेती थीं, दोस्त बना लेती थीं, उन्हें अपने परिवार में शामिल कर लेती थीं। मैं भी अक्सर ही उनके घर जाती तो खाना खिलाये बगैर वे हमें आने नहीं देती। आज याद आता है कि शायद कई बार मैं उनके पास खाना खाने के लालच से भी जाती थी।

1997 के दिसंबर महीने में रांची में अंतरराष्ट्रीय महिला सम्मेलन का आयोजन रोज दी की अध्यक्षता में हुआ था। यह कार्यक्रम रांची विश्वविद्यालय में आयोजित था। इस कार्यक्रम में मुझे भी रोज दी के साथ शामिल होने का मौका मिला था और यह, वह समय था जब मैं रोज दी के बहुत करीब आ गई थी। इस कार्यक्रम के लिए जो कमिटी बनी थी उसमें शामिल होने के कारण लगभग हम प्रतिदिन मिलते थे। मीटिंग करना, व्यवस्था देखना इतने काम थे कि हम सभी लगातार व्यस्त रहते थे। उस सम्मेलन

में पूरे देश भर से लगभग दो हजार महिलाएं शामिल हुई थीं। तात्कालिक समय में इतनी बड़ी संख्या में महिलाओं का आना, उनके ठहरने की, खाने की व्यवस्था के साथ ही उनके स्वास्थ्य के बारे में सोचना बहुत बड़ा काम हो गया था। विषयों पर गंभीर चर्चा हो उसका भी ख्याल रखना पड़ता था। रोज दी ने कामों को जिस कुशलता से संभाला, अपनी टीम (जिसमें मैं भी शामिल थी) को लगाया वह मेरी स्मृति में आज भी ताजा है। रांची विश्वविद्यालय के विभिन्न विभागों में अलग-अलग राज्यों से आये प्रतिभागियों को ठहराया गया था, सभी जगह जा कर उनकी सुविधा या उनकी समस्याओं को देखना, उसका निबटारा करना, समाधान पर ध्यान देना, सम्मेलन के समय का लगभग प्रतिदिन का काम था। उस समय दक्षिण से आई महिलाएं रांची की दिसम्बर की ठंड को न झेल पाने के कारण बड़ी संख्या में बीमार पड़ी थीं, लेकिन उनके इलाज का पूरा ध्यान रखा गया था। वह सम्मेलन सफल रहा था। और उसका श्रेय रोज दी के नेतृत्व और उनकी टीम के कठिन मेहनत को गया था। उस समय मैंने देखा था कि रोज दी छोटी-छोटी सी कार्यवाहियों पर भी कुशलता से ध्यान देती थीं, और साथियों के साथ उनका सौहार्दपूर्ण व्यवहार सभी सहभागी को आकर्षित करता था।

सिमडेगा से निकल कर रांची विश्वविद्यालय तक का उनका सफर संघर्ष और परिश्रम का था। मैं जब रांची आई थी, उस समय भाषा, संस्कृति के आधार पर एक अलग झारखंड राज्य की मांग का आंदोलन अपने चरम पर था। उस आंदोलन के शीर्ष के कुछ नेताओं में रोज दी भी एक थीं। साथ ही वे झारखंड की महिलाओं की कुछ विशेष समस्याओं पर भी गंभीरता से खुल कर बोलती थी, लेखों में चर्चा करती थीं। इन समस्याओं पर उनके विचार बिलकुल स्पष्ट थे। झारखंड की महिलाओं की विशेष समस्याओं पर जितने सहज, गंभीर, बेबाक रूप से, वे अपनी बात, लेखों में हो या मंच से रखती थीं, सभी प्रभावित हुए बगैर नहीं रह पाते थे। झारखंड आंदोलन के बारे में हो या यहाँ की महिलाओं की विशेष समस्याओं के बारे में आज तक दूसरी कोई महिला उतनी समझदारी या स्पष्टता से अपनी बात

रखती नहीं दिखाई देती है।

रोज दी ने 'महिला समाख्या' में भी कई वर्षों तक काम किया। यहाँ काम करने के दौरान उन्होंने महिलाओं की, विशेष रूप से झारखंड की महिलाओं की समस्याओं, उनकी स्थितियों के बारे में या उनके साथ होने वाले शोषण के बारे में वस्तुपरक तरीके से विचार कर बड़ी ही गहनता से काम किया। सुदूर गाँवों में जाना, तथ्य इकट्ठे करना, समाधान का रास्ता निकालना उनकी कर्मठता और महिला समस्याओं के प्रति गंभीरता को दर्शाता है।

1995 से कनक दी, मैंने तथा कुछ अन्य महिलाओं ने मिलकर 'सम्भवा इंजोर' नाम से एक पत्रिका निकालने की शुरुआत की थी, जिसमें रोज दी भी हमारे साथ जुड़ी रहीं थीं। पत्रिका के लिए उन्होंने हमारा हर तरह का सहयोग किया था। पहले पत्रिका का नाम केवल 'संभवा' रखा गया था, लेकिन रोज दी की सलाह थी कि झारखंड की संस्कृति, भाषा को दर्शाने वाले शब्द 'इंजोर' को अगर जोड़ दिया जाए तो अच्छा रहेगा। और इस तरह पत्रिका 'संभवा इंजोर' हो गई। यह उनके झारखंड की संस्कृति, उसके भाषा के प्रति, हर वक्त सचेत रहने की जिम्मेवारी को दर्शाता है।

रोज दी जो कभी मेरी दोस्त बन जाती थीं, तो कभी अभिभावक भी, वैसे व्यक्तित्व की, सामाजिक, संघर्षशील, अनुभवी साथी की जरूरत मुझे हमेशा रहेगी, और उनकी स्मृतियाँ ताउम्र मेरी पूंजी बन कर साथ रहेंगी।

आज उन्हें मेरा अंतिम जोहार। ■

रोज दी ! जो अमर हैं

सचि कुमारी

रोज दी ! एक ऐसा नाम जो दशकों से एक लेखिका, प्राध्यापक, स्त्री संघर्ष की प्रणेता एवं माँ-माटी और भाषा के पैरोकार के रूप में जानी जाती रहीं। विद्वता एवं परोपकार तो उनको विरासत में मिली थी। हाँ, प्यारा केरकेट्टा की सुपुत्री ने उनके सपनों को आगे बढ़ाते हुए कई पदों को सुशोभित किया और भाषा-साहित्य के विकास एवं पहचान की पैरोकारी के साथ ही साथ स्त्री अधिकार के प्रति चेतना जगाने एवं आने वाली पीढ़ियों के लिए संघर्षशील महिलाओं की खेप तैयार करने में उन्होंने कोई कसर नहीं छोड़ी।

वर्ष 1995 में मैं उनके संपर्क में आई। मौका था छोटानागपुर सांस्कृतिक संघ की महिला इकाई 'मिसी' की स्थापना का। लगभग 2000 ग्रामीण महिलाओं एवं निवर्तमान डीआरडीए अध्यक्ष श्री हिमांशु कच्छप जी के उपस्थिति में रोज दी के कर – कमलों से राँची जिले के बेड़ो प्रखंड में इसका उद्घाटन हुआ तब से मुझे उनका सानिध्य मिला। इसके पूर्व भी मैं उनके नाम से परिचित थी, दरअसल डॉ. पद्मश्री रामदयाल मुंडा काका, डॉ. बिसेश्वर प्रसाद केशरी, डॉ. पद्मश्री गिरिधारी राम गौंझु एवं मेरे बाबा ईश्वरी प्रसाद जब भी साथ होते रोज दी की चर्चा जरुर होती या वे भी साथ होतीं। मेरे बाबा के साथ उनके आत्मीय संबंध थे, वंदना (रोज दी की पुत्री) उन्हें मामा कहकर बुलाया करती थी। विद्वता में इन सबके बीच वो किसी से कम नहीं थीं।

उनके सानिध्य में 'नावो' के बैनर तले मैंने अनगिनत यात्रायें की। कभी हम महिलाओं की भीड़ में जमीन पर भी सोये। झारखण्ड में महिला आयोग के गठन, महिला हिंसा की समाप्ति के लिए कानून बनाये जाने, गुमला की शंखी साहू, जिसे हल चलाने के लिए दण्डित करते हुए उसके नाक – कान काट लिए गये थे, उसके न्याय के लिए, जल-जंगल जमीन एवं सत्ता-संपत्ति पर स्त्री अधिकार की आवाज उठाने की प्रेरणा रोज दी से मिली। वर्ष 1999 की बात है, हम पुरी में इंसाफ की एक बैठक में शामिल थे। खाली समय में कुछ लोग घूमने चले गये, मैं और रोज दी पुरी समुद्र तट पर घंटो बैठकर बातें करते रहे, उनके बातों में प्रमुख बातें यही थीं कि स्त्रियों को पितृसत्ता की गुलामी से आसानी से मुक्ति नहीं मिलेगी, इसके लिए खास दृष्टिकोण के साथ अनवरत संघर्ष करना पड़ेगा क्योंकि यह संघर्ष राज्य सत्ता के साथ तो रहेगी ही, उससे कहीं ज्यादा यह हमारे अपनों के साथ होगी अर्थात हमें थोड़ा बहुत बागी होने का इल्जाम भी झेलना पड़ सकता है। वे मुझे प्रेरित किया करती थीं, कहती थीं कि तुम अपने पिता के विरासत को आगे ले जाओगी। मैं भी वंदना को तैयार कर रही हूँ कि वह मेरी और अपने नाना की विरासत को आगे ले जाए।

रोज दी को महिला संबंधी कई घटनाओं पर तीखी प्रतिक्रिया, फैक्ट फाईडिंग, त्वरित न्याय के लिए आवाज उठाने, उनके साहित्य – रचना, संयुक्त बिहार में महिला समाख्या की निदेशक, राँची विश्वविद्यालय के जनजातीय एवं भाषा विभाग में खड़िया भाषा के अध्यापन, नावो झारखण्ड के समन्यवयक, महिलाओं के समता और न्याय के लिए राष्ट्रीय एवं अंतराष्ट्रीय मुहिमों को शक्ति प्रदान करने एवं उसमें आदिवासी स्त्रियों एवं झारखण्ड सन्दर्भों के समावेशीकरण के लिए जाना जाता है।

स्वभाव से जीवट एवं सादगी की प्रतिमूर्ति रोज दी झारखण्ड अलग राज्य होने के बाद महिला आयोग के अध्यक्ष जैसे अनेकों पद की हकदार थीं परन्तु उन्हें यह अवसर प्राप्त नहीं हो सका जिसका हम सबों को मलाल है। बेबाक एवं नपे – तुले शब्दों में स्पष्टता के साथ अपना पक्ष रखना या किसी मामले में अपनी राय देना उनके

व्यक्तित्व का अहम् हिस्सा था। वे कहा करती थीं, जीवन अपने शर्तों पर जीना चाहिए और इसपर सिर्फ तुम्हारा और तुम्हारा ही हक़ होना चाहिए। चूँकि मैं एक मध्वर्गीय पिछड़े वर्ग से आती हूँ जहाँ बेटा और बेटी के लिए भिन्न मापदंड तय होते हैं, मैं भी इससे अछूती नहीं थी। वे कहती थीं तुम बोलो, प्रतिवाद करो, यह बगावत नहीं, जरुरत है, उनके इन शब्दों से मेरा मनोबल बढ़ता और मैं मुखर होती चली जाती। उन्होंने मुझे बाहर के वातावरण से रू-बरू कराया यानि कि मुझे गढ़ने में तमाम लोगों के साथ रोज दी के योगदान को मैं कभी नहीं भुला सकती। वैसे तो शिक्षा – साहित्य एवं नारी सशक्तिकरण के लिए उन्हें पूरा झारखण्ड ही नहीं देश के कई मुहीम हमेशा याद रखेंगे परन्तु बात – बात पर यह बात कचोटती है कि क्या रोज दी की अंत्येष्टि राजकीय सम्मान के साथ नहीं की जा सकती थी? या उन्हें बाकी लेखकों एवं साहित्यकारों की पंक्ति में शामिल करते हुए किसी सर्वोच्च सम्मान से नहीं नवाजा जा सकता था? खैर, यह हमारे हाथ में नहीं था और न ही है। रोज दी हमारी स्मृति में हमेशा रहेंगी। और अपने व्यक्तित्व एवं कृतित्व के लिए अमर हो गयी हैं, इसका हमें संतोष है। आपकी बातें और नसीहतें हमेशा याद रहेगी। आपने मुझे एक सशक्त अवधारणा से परिपक्व बनने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। श्रद्धांजलि! ■

रोज दीदी को अंतिम जोहार

डॉ. माया प्रसाद

जीवन संघर्ष में तपी, उजली हँसी वाली डा. रोज केरकेट्टा हमारी रोज दीदी आज हमारे बीच नहीं हैं। सिमडेगा जिले के बोलवा प्रखंड में, शिक्षाविद् और समाजसेवी प्यारा केरकेट्टा की बड़ी बेटी रोज दी ने अपनी स्नातक तक की शिक्षा सिमडेगा तथा एम. ए. की डिग्री रांची विश्वविद्यलय से प्राप्त की। कई शिक्षण संस्थाओं में अल्पकालीन सेवा देने के बाद उन्होंने रांची विश्वविद्यालय के जनजातीय भाषा विभाग में योगदान दिया तथा सेवानिवृत्ति तक छात्रों को खड़िया भाषा की शिक्षा देती रहीं। इस अवधि में उन्होंने खड़िया बोली तथा खड़िया में अनेक कृतियों की रचना की।

लेकिन उपर्युक्त परिचयात्मक टिप्पणी रोज दी के व्यकित्व को जांचने के लिए पर्याप्त नहीं है। डा. रोज केरकेट्टा एक ऐसा व्यक्तित्व, जिसने गैर बराबरी के विरुद्ध केवल कागजी वक्तव्य नहीं दिए। उन्होंने झारखंड के जंगलों-पहाड़ों, गाँव-गलियारों तथा शहरी बस्तियों में बसनेवाली महिलाओं को पुरुष-वर्चस्व वाली दुनिया में समाज, राजनीति और सत्ता के विरुद्ध खड़े होने की हिम्मत दी। उन्होंने उन्हें बताया कि देश की लोकतांत्रिक व्यवस्था महिलाओं को जाति, धर्म तथा वर्गगत भेदभाव का निषेधकर समान मानवाधिकार देती है।

वर्ष 1997 में हमारी संयुक्त कोशिशों से राँची विश्वविद्यालय के परिसर में राष्ट्रीय महिला सम्मेलन का सफल आयोजन हुआ। हम दोनों देर रात तक परिसर में साथ-साथ घूमते क्योंकि प्रशासन ने हमें सुरक्षा मुहैय्या कराने से इन्कार कर दिया था। फिर पढ़ने की यात्रा और ऐसी अनेक छोटी-बड़ी यात्राएँ। मेरे लिए सबसे यादगार यात्रा थी भोपाल की। रोज दीदी ने इस सफर में मुझे साथी, मित्र बनाया था। सन् 2008 में जब मध्यप्रदेश सरकार द्वारा उन्हें 'रानी दुर्गावती' सम्मान दिया जा रख था, मैं उन पलों की साक्षी बनी थी।

परने की नर्सरी से लाया गया लीची का पौधा उनके अहाते में आज भी फूल-फल रहा है। पपीते का पेड़ भी फलों से लदा है। पर इन सबके बीच हमारी रोज दीदी नहीं हैं। मैं अपनी और अन्य साथियों की ओर से उन्हें अन्तिम जोहार कहती हूँ। ■

प्रो. डॉक्टर रोज केरकेट्टा - रोज दी

कल्याणी मीणा

रोज दी का नाम आते ही मानस पटल पर एक चित्र उभर आता है – एक शांत, सौम्य, स्मित हंसमुख चेहरा पर दृढ़ता और संकल्प के स्पष्ट भाव वाली महिला। मानो एक मातृसमान लौहमानवी हजारों तूफानों को पछाड़ते हुए डटकर खड़ी हैं, अगली कई पीढ़ियों के प्रेरणा - स्तम्भ के रुप में!

रोज दी से मेरी मुलाकात 1992-93 के आसपास हुई थी। उन दिनों ''हम सफर'' बैठक के लिए विशेषकर दक्षिण बिहार से महिलाओं को पहचान कर एकजुट करने का कार्य मैं कर रही थी, जो किसी न किसी रुप में परिवर्तन के कार्य में लगी हुई थीं। चाहें वह प्रयास व्यवस्था परिवर्तन के लिए हो या दलित शोषित और नारी शक्ति को जगाने का छोटा प्रयास। ''हम सफर'' के प्रयास के दौरान ही प्रो. मालंच घोष, डॉ. उषा सक्सेना, डॉ. रोज केरकेट्टा, सिस्टर पिलार, सिस्टर ज्योति, अंजलि बोस, अंजलि भट्टाचार्य जैसे महिलाओं से मुलाकात हुई। हमारा सफर बैठक में इन सारी महिलाओं के साथ उनसे जुड़ी ग्रामीण नेतृत्वकारी महिलायें मिलकर वर्ष में एक बार एक जगह मिलती थीं और विचार विमर्श करती थीं।

हमारे चर्चाओं या विमर्शों के केंद्र में कुछ प्रश्न उभरते थे कि विकास का मतलब क्या है? किस विकास को प्राथमिकता मिलनी चाहिए, विकास की दौड़ में कौन आगे हैं? और कौन पीछे, कौन शोषित हो रहे हैं? जो हाशिये पर है, कमजोर हैं – उन्हें पहचानकर जागरूक करने के साथ-साथ संगठित कैसे करें? इत्यादि। हम सब पितृसत्ता और पूंजीवादी विकास व्यवस्था को वैज्ञानिक तरीके से समझकर नयी दृष्टि के साथ रणनीति और आगे की योजना बनाते थे।

ये सारी महिलाएं अपने-अपने क्षेत्र में – कोई विस्थापन के विरोध में, कोई खदान और कारखाने में मजदूर तथा महिला मजदूरों के शोषण के विरोध में, कोई

घरेलू हिंसा, डायन हिंसा और छुआछूत आधारित शोषण के विरुद्ध में,तो कोई फील्ड फायरिंग रेंज के नाम से आदिवासी क्षेत्र में कोहराम मचाने वाले विकास के विरोध में, तो कोई महिलाओं के जमीन और संसाधन पर अधिकार के लिए संघर्ष कर रहे थे।

रोज दी का व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन रोमांच से भरा हुआ था। नए-नए जोखिम भरा काम करने में उन्हें मजा आता था और वह करती भी थीं, समाज की टिप्पणियों की परवाह किए बिना। इसका एक उदाहरण मेरे अनुभव से जुड़ा है।

एक बार रोज दी ने बताया कि कल हम लोग एक मीटिंग में जाएंगे जो जनवादी लोगों ने रखा है। मैंने हां भी कर दी। दूसरे दिन हम तीन महिलाएं शाम के बाद रांची में ट्रेन में बैठ गईं। ट्रेन पर चलते-चलते रात हो गयी और चारों तरफ की रोशनी गायब हो गयी। अंधेरा ही अंधेरा था। एक स्टेशन में रोज दी ने हमें उतरने के लिए कहा। हम सब लोग जल्दी से उतर गए। पता नहीं चला कि वह कौन-सा स्टेशन था। रोशनी न होने के कारण स्टेशन का भी नाम भी नहीं पढ़ पाए। मैंने पहली बार देखा एक स्टेशन मास्टर लालटेन दिखाकर ट्रेन को रोका और फिर ट्रेन को रवाना किया। मेरे लिए यह यात्रा पूरी तरह रोमांच से भरी हुई थी। मैंने भी कुछ

पूछा नहीं। दो-तीन पैसेंजर और भी उतरे, फिर थोड़ी देर में अंधेरे में कहां समा गए, पता नहीं चला। हम लोग कुछ देर उस अंधेरे स्टेशन पर इंतजार किये, समय बिताये। स्टेशन में सिर्फ एक ही व्यक्ति था, जिसके पास लालटेन था, अब वह भी जाने की तैयारी कर रहा था। क्योंकि अब रात में और कोई ट्रेन आने-जाने वाली नहीं थी। कुछ समय बाद, रोज दी के निर्देश पर हम तीनों लोग चलने लगे। हाथ में एक छोटा टॉर्च था जिसकी रोशनी में पगडंडी ही दिख रही थी और कुछ भी नजर नहीं आ रहा था। लगभग एक डेढ़ घंटा चलने के बाद, जंगल के बीच एक छोटा सा समतल मैदान आया जहां पहले से 10 -15 सिर या कहूं कि उनके छाया दिख रहे थे। किसी का भी चेहरा नहीं दिख रहा था। मैं तो अजीब सी घबराहट में थी। रोज दी बीच-बीच में किसी-किसी से स्थानीय भाषा में कुछ बातचीत कर रही थी, जो मेरी समझ के परे थी। मैं तो किसी चमत्कार या रोमांच की प्रतीक्षा में थी। लगभग एक घंटे बाद एक लंबा सा चेहरा जंगल को चीरते हुए प्रकट हुआ। उनके साथ में हम चलने लगे।

रोज दी बहु आयामी प्रतिभा की धनी थीं। शिक्षक, उत्प्रेरक, लेखक, कवयित्री, तार्किक बुद्धिजीवी, समाजसेवी तो थी ही और वह महिलाओं की पीड़ा एवं दर्द से बहुत व्यथित भी होती थी। एक जिंदादिल इंसान भी थीं। रोज दी के संपर्क में जो भी आया, वे सभी उनके सरल, नम्र व्यवहार से प्रेरित होकर उनके आत्मीय बन गये। हर साल अनेकों लड़कियां गांव से आकर उनके रांची के घर में रहकर अपनी पढ़ाई पूरी की। फिर उन लोगों को रोजगार से भी जोड़ने का अथक प्रयास रोज दी करती रहीं। रोज दी के माध्यम से 4-5 लड़कियां 'प्रेरणा भारती' में भी काम की। वे सब काफी लगन और मेहनत से काम करती थीं। फिर कुछ समय बाद वे लड़कियां शिक्षा विभाग, पुलिस या अन्य कोई क्षेत्र में स्थायी नौकरी में जुड़ गयीं।

रोज दी लंबे समय तक 'प्रेरणा भारती' के संचालन समिति की सदस्य भी रहीं।

उनके प्रशिक्षण देने का तरीका भी अलग था। उन्हें कभी उत्तेजित या विचलित होते हुए नहीं देखा। सभी को बड़े शान्ति और धैर्य के साथ समझाने की, शिक्षित करने की कोशिश करती थीं। उनके माध्यम से उस समय बिहार में काम कर रहे कई नेतृत्वकारी महिला और पुरुष एवं उनके संगठनों से मैं भी परिचित हुई। झारखंड की समस्या, संस्कृति और खूबियों को समझने का मौका मिला। इस दृष्टि से वास्तव में वे मेरी भी गुरु थीं।

डॉ रोज केरकेट्टा, प्रोफेसर मालंच घोष और सिस्टर पिलार झारखंड-बिहार महिला मंच की तीन मजबूत स्तंभ थीं।

समता और न्याय के लिए प्रतिबद्ध, जुझारू इंसान – रोज दी को हूल जोहार! ■

रोज केरकेट्टा जी के साथ मेरी यादगार यात्रा

पुष्पा सेकुन्दा टेटे

बात उन दिनों की है, जब मैं 'प्रभात खबर' से इंटर्नशिप करने के बाद ग्रामीण रिपोर्टिंग कर रही थी। उन्हीं दिनों महिलावादी डॉ. रोज केरकेट्टा से मेरी मुलाकात हुई थी। 2002 में मुझे उसके साथ पहली बार सिमडेगा जाने का मौका मिला था। सिमडेगा स्थित उनके घर में दो दिवसीय महिला कार्यशाला आयोजित थी। रोज केरकेट्टा एम्बेसडर कार से मुझे लेने लोबाडीह चौक आई थी। एम्बेसडर कार उसकी सबसे पसंदीदा कार थी। एम्बेसडर कार बहुत ही आरामदायक थी। वह जरा भी हिलाती-डुलाती नहीं थी। थकान महसूस नहीं होती थी। इसलिये वह लम्बी दूरी की यात्रा के लिये हमेशा एम्बेसडर कार को ही किराया पर लेती थीं। उनके घर चेशायर होम बरियातू की तरफ एक सज्जन का एम्बेसडर कार था, जिसे वह किराया पर लेती थीं। ड्राइवर भी आदिवासी था। रास्ते में रोज जी मुझे कई किस्से कहानियाँ सुनाती जा रही थीं।

कोनबीर नवाटोली पार करने के लगभग एक किलोमीटर बाद कइलगा गाँव है। कइलगा बड़ा गाँव है। वह दाहिने तरफ के खेतों को दिखाती हुई बोली, इन्हीं खेतों के आस-पास शंखी का खेत है। एक दिन वह हल-बैल लेकर अपना खेत जोत रही थी। महिला होकर खेत में हल चलाने की घटना पूरे गाँव में आग की तरह फैल गयी थी, चूंकि यह परम्परा के खिलाफ है। खेतों में हल चलाना और घर का खपरा छारना महिलाओं के लिये बर्जित है। जो इसके खिलाफ जाता है उसे दण्डित किया जाता है। दण्ड के रूप में महिलाओं का कान काटा जाता है। हल चलाना या खपरा छारना क्यों वर्जित है? पूछने पर गाँव के बड़े-बुजुर्ग कहते हैं – ई काम पुरूष मनक हेके। महिला मन लागिन ई काम शोभा नी देवेल। कइलगा में भी लोग बात करने लगे कि महिला होकर वह खेत कैसे जोत सकती है? यह नियम के विरूद्ध है। कइलगा में सरना खड़िया भी बहुतायत में हैं

वे अपने सामाजिक दस्तूरों का आज भी भली-भाँति पालन करते हैं। समूह में आकर उन्होंने शंखी का कान काटा था। शंखी उनके खिलाफ गुमला में नामजद मुकदमा की थी। इस घटना में लिप्त खड़िया महिलाओं को कई बार गुमला जाना पड़ा। वह बहुत परेशान हुई और अंत में गुमला कोर्ट जाना छोड़ दी। वह अपने सामाजिक दस्तूरों को कोर्ट के समक्ष अच्छी तरह प्रस्तुत नहीं कर पायी थी।

कइलगा में रास्ता किनारे दाहिने तरफ पहला घर है, जिसके आंगन में बड़ा-सा इमली का पेड़ है। रोज जी ने ड्राइवर से कहा, इस घर के गेट के बगल में गाड़ी रोक देना हमें यहाँ काम है। रोज जी शंखी से मिलना चाहती थी। हम दोनों उस घर के आंगन में प्रवेश किये। आवाज देने पर एक दुबली-पतली महिला बाहर निकली। रोज जी उससे कुशलक्षेम पूछा और कहा कि क्या तुम शंखी को बुला सकती हो? उसने कहा, आयी थी, आपका आसरा देख रही थी फिर वापस चली गई। ठीक है, मैं बुला देती हूँ। कुछ देर बाद वह शंखी को लेकर पहुँची। उसने रोज जी को देखते ही प्रणाम किया और कुशलक्षेम पूछा, रोज जी ने कहा, मैं ठीक हूँ। अभी तुम्हारा केस कैसा चल रहा है? उसने कहा, पिछली बार तारीख पड़ने पर मैं गई थी गुमला

लेकिन वे लोग नहीं आये थे। वे लोग दो-तीन बार से नहीं आ रहे हैं। रोज जी ने कहा, अभी तुम्हारा कान ठीक है न? हाँ, दीदी ठीक है। आप लोग सिलाई करवा दिये थे। अब मैं कानफूल भी पहन लेती हूँ, उसने उत्साहित होते हुए कहा था। लम्बी बात न करके रोज जी ने उसके हाथ में कुछ रूपये देती हुई बोली तुम्हें काम देगा रख लो। फिर हमलोग गाड़ी में बैठकर सिमडेगा की ओर चल दिये। रोज केरकेट्टा जी खड़िया थीं। वह भली-भाँति जानती थी कि खड़िया परम्परा ही नहीं बल्कि आदिवासी समाज में महिलाओं को हल चलाना सख्त मना है और ऐसी परिस्थिति में भी वह शंखी को कानूनी लड़ाई लड़ने में मदद करती हैं। रोज जी महिलावादी भी थीं। पीड़ित महिला आदिवासी हो या गैर आदिवासी वह सबों से समान व्यवहार करती थीं।

हमलोग शाम के लगभग तीन बजे सिमडेगा पहुँच गये। रोज जी का पुश्तैनी मिट्टी का घर, जिसमें एक लम्बा सा खुला बरामदा था। बरामदे में चटाई बिछायी गई थी और कुछ तीन-चार कुर्सियाँ भी थी। चटाई में तीन-चार महिलाएं पहले से बैठी हुई थीं। बरामदा में एक दरवाजा था, जिससे होकर अन्दर के कमरों में जाते थे। अन्दर में दो कमरा था और उसी कमरे के अन्दर और एक कमरा था जिसमें मुझे ठहराया गया था। बरामदा के सामने छोटा-सा आंगन था और आंगन के सामने और एक दीवार थी और उसमें गेट लगा था। अन्दर में एक बड़ा-सा कच्चा मकान था जिसमें ढेर सारी स्कूली बच्चियाँ रहती थीं। वह एक हॉस्टल की तरह था। सुदूर गाँव की बच्चियाँ यहाँ रहकर पढ़ाई करती थीं। शाम के चार-पाँच बजते ही पन्द्रह-बीस बच्चियाँ सामान के साथ वहाँ पहुँच गईं। उनकी उम्र लगभग पन्द्रह-सोलह साल की थी। मैंने रोज जी की छोटी बहन से पूछा, ये बच्चियाँ कहाँ से आ रही हैं? उसने बताया कल से मैट्रिक की परीक्षा है और इनका सेंटर सिमडेगा है इसलिये ये सभी बच्चियाँ मैट्रिक परीक्षा देने आ रही हैं। हमारे यहाँ ढेर सारी बच्चियाँ रहकर आस-पास के स्कूलों में पढ़ाई करती हैं, कुछ कॉलेज भी जाती हैं।

रोज जी की छोटी बहन मेरा बैग और मुझे लेकर अन्दर गई। अन्दर के सबसे आखिरी कमरे में लगे बेड पर उसने मेरा बैग रख दिया और बोली तुम यहाँ पर सोओगी। मैं उसके पीछे-पीछे वापस बरामदा पर आ गई। वह थोड़ी देर बाद चाय और बिस्किट लेकर आयी। हाथ-मुँह धोकर मैं और रोज जी चाय पीने लगे। चाय पीते हुए इधर-उधर की बातें होने लगी। फिर रोज जी ने एक महिला से कहा, जाओ महिलाओं को बुला लाओ, उनसे कहना कि हमलोग पहुँच गये हैं। आधा घण्टा बाद एक-एक करके लगभग बीस-पच्चीस महिलाएं जमा हो गईं। उसने सबों को 'लिंगानुपात क्या है', उसके बारे बिस्तार से बताया और मैंने ट्रैफिकिंग की चर्चा की। सिमडेगा में हो रही ऐसी कई घटनाओं की चर्चा महिलाओं ने भी किया। उन्होंने बताया कि असामाजिक एवं दलाल किस्म लोग बहला-फुसलाकर आदिवासी युवतियों से दोस्ती करके उन्हें महानगरों में काम दिलाने के बहाने ले जा रहे हैं। उन्होंने यह भी बताया कि कुछ मामलों में हमारी युवतियों की भी गलती होती है। वे गैर आदिवासी युवकों पर विश्वास कर लेती हैं, उसने दोस्ती करती हैं और काम की तलाश में महानगरों का रूख करती हैं। इस कार्यशाला के माध्यम से मुझे सिमडेगा की किशोरियों और युवतियों के प्रति होने वाले आपराधिक घटनाओं को जानने का मौका मिला। कार्यशाला समाप्त होने के बाद हमें फिर से चाय-बिस्किट मिला।

चाय पीकर मैं बरामदा पर ही बैठी हुई थी। इसी दौरान मैंने अन्दर के कमरे से बाहर निकलते हुए एक साँप को देखा। मेरी नजर उसी पर अटक गई। वह दरवाजा के चौखट पर अटक-सा गया था। रोज जी की बहन बाहर से अन्दर की ओर घुस रही थी उसने साँप को देखा लेकिन कोई प्रतिक्रिया नहीं दी और उसके बगल से होकर अन्दर घुस गई। मैं बरामदा में बैठकर सब कुछ देख रही थी। उसके अन्दर से लौटने तक भी वह चौखट पर ही था। उसने कहा, ये भी ना जहाँ-तहाँ आ जाता है। साँप को देखकर वह क्यों नहीं डरी? मैं सोच में पड़ गई। वह साँप अन्य साँपों की तुलना में बिलकुल अलग था। उसका आगे और पीछे का हिस्सा एक समान था। बह थोड़ा लाल रंग का था और उसकी गति एकदम धीमी थी। मेरी नजरें साँप से हट नहीं रही थी।

रोज जी मेरा चेहरा देखकर भाँप गई। उसने अपनी बहन से कहा, पुष्पा डर रही है तुम साँप को किसी घड़ा में रखकर बंद कर दो। जब साँप बाहर निकला तब उसने उसे एक घड़ा में रख दिया और घड़ा के मुँह पर मिट्टी का ढक्कन लगा दिया। रोज जी मुझे देखते हुए हँस कर बोली अब तो नहीं डरोगी न! उस समय मैं घड़ा के पास ही खड़ी थी। रोज जी की बहन ने बताया, इसे जड़ा साँप कहते हैं। यह बहुत ही धीरे चलता है। यह किसी को नुकसान नहीं पहुँचाता है।

फिर उसी शाम रोज जी ने कहा, पुष्पा चलो हमलोग जामपानी चलते हैं। दवा लाना है। वहाँ एक वैद्य है, वह अच्छा मालिश तेल बनाता है। मैं उसी से मालिश तेल बनवाती हूँ। हमलोग जामपानी के रास्ते पर थे। रोड चौड़ीकरण के लिये बायीं ओर खुदाई की गई थी अतः हमलोगों को पहुँचने में काफी देर हो गई। वैद्य का घर रास्ता किनारे बायीं ओर था। पता चला कि घर में बैद्य नहीं है। आज जामपानी बाजार है शायद इसलिये देर से आयेगा। मैं गाड़ी में ही बैठी थी। रोज जी और उसकी बहन बैद्य के दरवाजे के पास ही खड़ी थीं। लगभग एक घण्टा इंतजार के बाद बैद्य वापस लौटा, फिर हमलोग दवा तेल लेकर वापस सिमडेगा लौटे। रात का खाना खाने के बाद रोज जी और उनकी बहन सो गई लेकिन मेरी नींद कोसो दूर थी। जड़ा साँप मेरे जेहन पर बैठ गया था। हालांकि मैं सोने से पूर्व बेड के नीचे और ऊपर टॉर्च मार कर अच्छी तरह से देख लिया था। दूसरे दिन हमलोग नाश्ता करने के बाद वापस राँची लौट आये। डॉ. रोज केरकेट्टा के साथ राँची से सिमडेगा की तक यह यादगार यात्रा थी। इस दौरान मैंने सिमडेगा में महिला अपराध पर एक स्टोरी की थी और कार्यशाला की रिपोर्टिंग भी जो प्रभात खबर में प्रकाशित हुई थी। इस दौरान मुझे रोज जी से सीखने और उसे जानने का मौका मिला।

डॉ. रोज केरकेट्टा जी के साथ मेरी दूसरी यात्रा तोरपा तपकरा तक की थी। इस दौरान भी वही एम्बेसडर कार थी और वही ड्राइवर था। गाँव का पीसीसी रोड कम चौड़ा होता है। दोनों तरफ मिट्टी के घर, घर के सामने जोबला और जोबला पानी में बत्तख और मुर्गी सखरी जूठा (थाली और डेकची का बचा-खुचा भात) तलाशते हुए दिखाई देते हैं। गाँव की पीसीसी सड़क पर पहुँचते ही रोज जी ने ड्राइवर से कहा, देखो! गाड़ी तेज मत चलाना, गाँव का रास्ता है कभी भी अचानक बत्तख, मुर्गी या बकरी का बच्चा गाड़ी के नीचे आ सकता है। बत्तखों की प्रकृति है कि वे तेज नहीं चलते और एक के पीछे एक चलते हैं इसी क्रम में हमारी गाड़ी से एक बत्तख दब गई। गाँव वालों ने हमारा रास्ता रोक दिया। वे मुण्डारी में कहने लगे मुआवजा देना होगा। गाड़ी वाले हैं तो उसी हिसाब से मुआवजा लगेगा। वे सात सौ रूपये की मांग करने लगे। हमलोग असमंजस में थे। करे तो क्या करे। रोज जी ने कहा, एक बत्तख का दाम सात सौ रूपये तो नहीं है फिर आप लोग सात सौ रूपये क्यों मांग रहे हैं। वहाँ पर एक आदमी शराब के नशे में था वह बहुत किचकिच कर रहा था। अंत में मान-मनौव्वल के बाद तीन सौ पर बात अटक गई। मजाकिया लहजे में रोज जी ने कहा, हम बत्तख अपने साथ ले जायेंगे। नहीं, बत्तख लेने नहीं देंगे नशेड़ी ने कहा। रोज जी मुस्कुराते हुए कहा, हमने बत्तख का दाम दे दिया अब बत्तख हमारी हो गई। बत्तख मालिक ने कहा, हाँ... हाँ आप साथ ले सकते हैं। कुछ युवा भी जमा हो गये थे वे कहने लगे, मत ले जाईये हम इसे चखना बनायेंगे। वैसे आप लोग कहाँ जा रहे हैं युवाओं ने पूछा रोज जी ने कहा, हमलोग तपकरा जा रहे हैं। अच्छा! कहकर वे सामने से हट गये। जाने के क्रम में ही ऐसी घटना हो गई थी। फिर वापस हमें उसी रास्ते से लौटना भी था। हम उस गाँव को पीछे छोड़ आगे की ओर निकल गये।

रोज जी को गाँव का परिवेश बहुत पसन्द था। समय निकाल कर वह अक्सर गाँव की ओर चिर-परिचितों से मिलने, वहाँ का जाजया लेने निकल पड़ती थी। यात्रा के दौरान वह कई तरह की किस्से-कहानियाँ भी सुनाया करती थी। तीसरी बार मुझे उनके साथ पूर्वी सिंहभूम के पोटका प्रखण्ड क्षेत्र में जाने का मौका मिला था। वहाँ एक कार्यशाला में भाग लेने गई थी। कार्यशाला समाप्त होने के बाद रोज जी ने कहा, पुष्पा सबर खड़िया लोगों से मिलने चलोगी? मैंने कहा, जरूर। हमारे साथ श्रावणी भी

थी। घाटी चढ़ने के बाद हम तीनों सबर नगर पहुँच गये। वहाँ एक समतल मैदान जैसी जगह थी, जिसकी दायीं ओर स्वयं सेवी संगठन भारत सेवाश्रम का कार्यालय था, बीच में कच्ची सड़क बायीं ओर सब्जी का बड़ा-सा बगान था। जिसमें करेला, लौकी, भिंडी, भाजी साग, खीरा, ककड़ी की खेती की गई थी। बगान पर भारत सेवाश्रम का एकाधिकार था। बगान के एक किनारे एक छोटी-सी झोपड़ी थी। जहाँ दो सबर पति-पत्नी रहते थे। हमलोग गाड़ी से उतर कर बगान देखने चले गये। माली से पूछकर हमलोगों ने दो-तीन लौकी तोड़ लिये। भारत सेवाश्रम के दायीं ओर सबर खड़ियाओं (आदम जनजातियों) की बस्ती है। इंदिरा आवास द्वारा बनाया गया एक कमरा वाला छोटा-छोटा घर। शाम के छह बज रहे थे। रोज जी महिलाओं को देख उनकी ओर चली गई। वह पूर्व परिचित की तरह उनसे बात करने लगी थी। मैंने उनसे कहा, क्या आप पहले भी यहाँ आयी हैं? उसने कहा तुमलोगों की तरह मैं भी पहली बार आयी हूँ। लेकिन उनके बात करने के तरीके से यह आभास नहीं हो रहा था कि वह हम दोनों की तरह पहली बार सबर नगर आयी है। उसने एक नौजवान से कहा, जाओ बाबू और लोगों को बुला लाओ। हमलोग थोड़ा उनसे बात करना चाहते हैं। मैं उन सबर लड़के बच्चों को देख रही थी जो पेड़ पर चढ़कर रेडियो पर फिल्मी गाने सुन रहे थे। रोज जी मुझे आवाज देती हुई बोली, पुष्पा तुम इन किशोरी लड़कियों से कुछ बात करो। किशोरी लड़कियाँ माथे पर बिंदी और होठों पर लिपिस्टिक लगायी हुई थीं। मैंने अपना कैमरा निकाला तो वे लजाने लगीं। मई का महीना था, इसलिये उनसे शाम में मिलना आसान हो सका। बीस-पच्चीस की संख्या में महिलाएं, किशोरियाँ और किशोर लड़के एवं बच्चे हम तीनों के इर्द-गिर्द थे। फिर हमलोगों ने उनके साथ समूह में फोटो खिंचाया।

2005 में दैनिक अखबारों में एक समाचार प्रकाशित हुआ था। ओलिभा डुंगडुंग नामक एक किशोरी की गैंगरेप हुई थी और वह रिम्स में भर्ती थी। गैंगरेप की वजह से उसने अपना मानसिक संतुलन खो चुकी थी। तब मैं 'जुड़ाव' संस्था से जुड़ी थी। रोज केरकेट्टा जी ने कहा, हमें बलात्कार पीड़िता से मिलने जाना होगा। अस्पताल में उनके अभिभावक भी होंगे, उनसे भी हमलोग बात करेंगे। संस्था से जुड़ी शशि बारला, रोजालिया तिर्की और मैं रोज जी के साथ पीड़िता से मिलने रिम्स चली गई। रोज जी हमारी अगुवाई कर रही थी। रिम्स पहुँचने पर वह हमें सीधे नर्स हॉस्टल की ओर ले गई। उसने चलते-चलते बताया कि ओलिभा का मामला अभी पुलिस का मामला बन गया है। शायद हमें उनसे मिलने दिया जायेगा या नहीं। मजबूत सम्पर्क व्यक्ति रहने से अच्छा होता है इसलिये हम हॉस्टल वार्डन से मिलने जा रहे हैं, हॉस्टल वार्डन भी नर्सिंग की है। हमलोग उनसे बातचीत करने में उनकी मदद ले सकते हैं। रोज जी पहले से हॉस्टल वार्डन से परिचित थी। इस समय वह उनकी मदद लेना चाहती थी। हमें वह उनके कार्यालय तक ले गई। दुर्भाग्य से उससे मुलाकात नहीं हो पायी। वह कहीं बाहर गई थी। फिर हमलोग उस वार्ड में गये जहाँ ओलिभा डुंगडुंग भर्ती थी। वह चीख-चिल्ला रही थी। उसके परिजन कुछ भी बता सकने की स्थिति में नहीं थे। वार्ड के अन्य मरीजों ने शिकायत के लहजे में कहा, इसके कारण हम रात में सो नहीं पाये। वह कभी बेड पर खड़ी होकर चिल्लाती कभी नीचे उतर जाती। हमलोग वहाँ से वापस लौट आये। इन प्रकरण में मैंने रोज जी से सीखा कि कहीं भी कुछ पता करना हो तो सम्पर्क सूत्र का होना बहुज जरूरी है। मैं जहाँ भी उनके साथ गई उसने बहुत कुछ सीखा। ■

झारखंड आंदोलन की सशक्त हस्ताक्षर, वरिष्ठ साहित्यकार, चर्चित लेखिका रोज केरकेट्टा के नहीं रहने की दुखद खबर मिली। उन्होंने आदिवासी भाषा, संस्कृति, साहित्य के क्षेत्र में अतुलनीय योगदान दिया। उनका काम, उनके नाम को हमेशा अमर रखेगा। उन्हें आखिरी जोहार! विनम्र श्रद्धांजलि!

- हरिवंश, राज्यसभा के उप सभापति

साभार : फेसबुक

परिवर्तन का मुखर स्वर रोज केरकेट्टा

आलोका कुजूर

डॉ. रोज केरकेट्टा का खड़िया भाषा साहित्य को समृद्ध करने में बड़ा योगदान रहा है। प्रेमचंद की कहानियों का खड़िया भाषा में अनुवाद भी इन्होंने ही किया है। रोज मैम (मैं उन्हें मैम कहती थी) क्योंकि मैं वीमेन्स कॉलेज में मालंच मैम की छात्रा थी। उनको मैम बोलती थी तो उनके साथ इनको भी मैम बोलने लगी। मैम केवल भाषाविद् ही नहीं थी, बल्कि झारखंड अलग राज्य के आंदोलन में महिला आंदोलनकारी के रुप में इनकी पहचान थी। रोज मैम एक लेखिका, नारीवादी चिंतक और संघर्ष करने वाली एक एक्टिविस्ट थीं।

रांची में महिला आंदोलन की नींव रखने का श्रेय भी इनको जाता है। जब झारखंड महिला हिंसा, डायन प्रताड़ना, महिलाओं के लिए संपत्ति पर अधिकार, सुरक्षा एवं पहचान को लेकर संघर्ष कर रहा था तब रोज मैम जैसे आदिवासी नारीवादी चिंतक ने समाज के व्यावहारिक पक्ष को हर मोर्चे और मंच पर अपने दृष्टिकोण के साथ रखती थीं। उन्होंने झारखंड के मुद्दों को देश में चल रहे आंदोलनों के साथ जोड़ा। बौद्धिक हो या संघर्ष हर मोर्चे पर न्याय का साथ दिया।

रांची में 1997 में जब छठा नारी मुक्ति राष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन हुआ, तब इनके नेतृत्व में सारे लोगों ने मिलकर इसे सफल बनाया। झारखंड में संघर्ष और रचना दोनों ही फलक में उनको नजरअंदाज कर आगे नहीं बढ़ा जा सकता है। हम यह भी कह सकते हैं कि रोज मैम मानव जीवन की बेहतरी के लिए आजीवन संघर्षरत रहीं।

जब रोज मैम लोग आंदोलन करती थीं, उस समय मैं एक छात्रा थी। उनसे मेरी मुलाकात मेरे अपने ही घर थड़पखना में एक बैठक के दौरान हुई। उस समय प्रोफेसरों की एक टोली जिसमें मालंच घोष मैम, रोज मैम जैसी और कई प्रोफेसर थे। उनलोगों ने काफी सक्रियता से महिलाओं के हिंसा के विरूद्ध एवं महिला शिक्षा पर बेहतर काम किया या यों कहें कि आनेवाली पीढ़ी के लिए राह आसान किया। उस दौर में जब रांची में कोई महिला संगठन नहीं था। रोज मैम, मालंच मैम लोग घर-घर घूमकर साप्ताहिक बैठक करते थे। बैठक में महिला की समस्या को सुनती थी तथा उन्हें मुद्दों के प्रति सजग भी करती थी। बेटियों और महिलाओं को शिक्षा और प्रौढ़ शिक्षा से जुड़ने के लिए लगातार अभियान चलाती थीं। बेटियां इनके साथ जुड़ती गईं और परिवर्तन की लड़ाई में एक नयी पौध का जन्म हुआ। उस नयी टीम को वैज्ञानिक चेतना से लैस एवं राजनीतिक रुप से परिपक्व बनाने का काम रोज मैम आजीवन करती रहीं।

उस समय झारखंड में डायन प्रताड़ना जैसे मामले काफी होते थे। औरतों का जीवन खतरे से भरा रहता था खासकर विधवा और एकल महिलाओं का। रोज मैम इन सबके खिलाफ आवाज उठातीं और सबके साथ मिलकर संघर्ष करती थीं। जहां औरते मौन होती थीं वहां उनकी आवाज बनकर रोज मैम खड़ा होती थीं। गुमला की शंखी साहू, जिसे हल जोतने के सवाल पर गांव वालों ने काफी प्रताड़ित किया। उनके कान काट दिये गये। उस केस में भी रोज मैम शंखी के साथ हर मोर्चे पर डटी रहीं। उनकी चिकित्सा से लेकर न्याय दिलाने तक रोज मैम ने साथ दिया। परंपरा के नाम पर महिलाओं के साथ होने वाली हिंसा को रोज मैम ने चुनौती के रुप में लिया और आजीवन इसके लिए संघर्ष किया। काम के प्रति उनका जुनून और प्रतिबद्धता से भी हमें सीख लेने की जरूरत है। कड़कड़ाती ठंड हो या चिलचिलाती धूप, इसकी परवाह न करते हुए वह हरदम काम में लगी रहती थीं। रोज मैम हम सबों की ताकत थीं। महिलाओं की आवाज थीं। यह आवाज न दबे इसका प्रयास हम सबों को मिलकर करना होगा। ■

डाक्टर रोज केरकेट्टा : अनफोल्ड किताब

शांति सवैंया

"लफ़्ज़ों के भी ज़ायके होते हैं, परोसने से पहले चख लेना चाहिए।' गीतकार गुलजार के शब्दों से मैं अपनी लेखनी की शुरुआत कर रही हूं। क्या लिखूं? रोज दी के बारे में...

कौन से शब्द से शुरुआत करूं?

'दुर्गा के रुप में अकेले बच्चों को संभाला, सरस्वती - लक्ष्मी बनकर समाज में शिक्षा का अलख जगाया, रानी लक्ष्मी बाई बनकर समाज से लड़कर महिलाओं के संघर्ष में साथ दिया। फूलो-झानो, सिनगी दई बनकर आंदोलन का नेतृत्व किया।

आप साहस, शक्ति और ज्ञान की भंडार थीं, आप अतुलनीय थीं। आप सचमुच एक रचनाकार थीं, जिसे ईश्वर ने अनंत बुद्धि की परिभाषा से नवाजा था।

बात उन दिनों की है, जब मेरी मुलाकात रोज केरकेट्टा दी से पहली बार सन् 2000 में हुई थी। महीना याद नहीं, शायद दिसम्बर था, ठंड थी। जिसमें झारखंड के 24 जिले से दो-दो महिलाएं उस बैठक में शामिल होने के लिए रांची में आईं थीं।

मेरे लिए वह माहौल बिल्कुल नया था, जगह नई थी, लोग नए थे। 24 जिले की महिलाओं का एक राज्य स्तरीय संगठन बना। मैं भी पश्चिम सिंहभूम से एक सदस्य के रूप में जुड़ी थी। इसके बाद मैं सन् 2003 में रांची रहने के लिए आ गई थी। उनसे 'बिरसा' के कार्यक्रम में रांची में दुबारा से मिलना हुआ। 'बिरसा' जहां मैं काम करती थी, डाक्टर रोज केरकेट्टा वहां की बोर्ड मेंबर थीं।

उसके बाद हमारी मुलाकात प्रत्येक तीन महीने में बोर्ड सदस्यों की बैठक में होती थी या फिर महिलाओं से संबंधित कार्यक्रमों में होती रही। उनकी धीमी मीठी सी आवाज़ को चुपचाप सुनती और उन्हें निहारती रहती थी। मैं हमेशा सोचती थी, मेरी आवाज़ उनके जैसे धीमा क्यों नहीं है।

एक बार मैंने उनसे पूछा भी था, आप शिक्षिका थीं, क्लास में जब आप पढ़ाती थीं, तो आपकी आवाज़ सुनकर बच्चे शरारत करते थे, शांत रहते थे या आपके डांटने पर मान जाते थे? तो उन्होंने कहा कि मैंने अपने बाबा से सीखा था कि शिक्षक बच्चों के अभिभावक होते हैं, उन्हें डांटकर या धमकाकर नहीं पढ़ाना चाहिए। मुझे कभी ऐसी कोई दिक्कत या परेशानी नहीं हुई।

यह जानकर काफी अच्छा लगा। उनके पुस्तकों के विमोचन कार्यक्रम में कई बार शामिल हुई, तब मैं बैठकर उन्हें सुनती थी, लोग उनके लेखनी की तारीफें करते थे, मुझे लगता था कि काश मुझे भी उनके बारे में बात करने

का मौका दिया जाता। लेकिन अफसोस है कि मैंने उनकी लिखी किताबें सजाकर रखा है, पढ़ नहीं पाई हूं जिसमें फिक्स डिपॉजिट, पगहा जोरी-जोरी रे घाटो, और स्त्री महागाथा की महज एक पंक्ति हैं।

रोज दी ने महिलाओं की दिनचर्या को कहानी के रूप में सबके सामने लाने काम किया। अकेली महिला के बारे में जानना हो तो डाक्टर रोज केरकेट्टा की किताब का एक पन्ना को उल्टे, महिला संघर्ष के बारे में जानना हो तो उनके द्वारा लिखित पुस्तकों को पढ़ें।

रोज दी एकांत, असंतोष, अकेलापन महिलाओं के जीवन दर्शन को अपनी लेखनी से उकेरा है। स्त्री के जीवन दर्शन को दर्शाते हुए एक पितृसत्तात्मक समाज के सामने महिलाओं को आंदोलन करने के लिए तैयार करने का काम किया है।

17 अप्रैल 2025, का वह दिन जब फेसबुक पोस्ट से जानकारी मिली कि रोज दी हमारे बीच नहीं रही। पोस्ट अश्विनी दादा जो उनके बेटी दामाद हैं, ने किया था, इसलिए मैंने पुष्टि करने के लिए उनको फोन किया, तब उन्होंने कहा कि खबर सही है। मैंने ही पोस्ट किया है। मैं रांची में ही थी, स्तब्ध रह गई, क्योंकि मैं दो दिनों से उनके पास जाने के लिए वंदना दी को फोन कर रही थी। बात नहीं हो पा रही थी।

मन में एक खटक थी। मैं बहुत ग्लानि महसूस कर रही थी, फिर मैं उनके बारे में सोचने लगी। उनके साथ बिताए पल को महसूस कर रही थी। तीन-चार वर्षों से बीमार चल रहीं थीं, इसलिए मैं बीच- बीच में वंदना दीदी से फोन पर उनकी खैरियत पूछ लिया करती थी।

5 जनवरी 2024 को मैं रोज दी से मिलने के लिए उनके आवास चेशायर होम रोड, बरियातू, रांची स्थित उनके आवास गई थीं। मैं काफी सालों बाद उनसे मिलने गई थी, उसने देखते ही कहा। तुम शांति सवैंया हो ना। मुझे बहुत खुशी हुई कि उन्होंने मुझे पहचान लिया और घरवालों के बारे में जानकारी ली। उसके बाद उन्होंने मुझसे पूछा कि मैंने शादी की या नहीं?

मैंने न में जवाब दिया, तब वह खुश होकर बोली तब तुम मेरे साथ काफी समय तक रह सकोगी। कोई फोन करके नहीं पूछेगा कि कब तक आओगी? लगभग तीन -चार घंटे उनके साथ समय बिताए। जैसे ही मैं वापस घर जाने के बारे में सोचने लगी, तभी वह वंदना दी से कहने लगी कि मैं शांति के साथ टाटा जाऊंगी और मेरा हाथ पकड़ कर मुझसे बोली कि मुझे अपने साथ टाटा ले चलो, वंदना मुझे कहीं जाने नहीं देती है।

मैंने भी उन्हें कहा कि मैं आपको अपने साथ ले जाने के लिए आई हूं। उन्होंने अपने देखभाल करनें वाली नैनी को कहा कि हम दोनों का सामान बांध लो, हमलोग शांति के साथ टाटा जाएंगे।

मैं बहुत ही दुःखी मन से वापस आई क्योंकि मैं रोज दी को झूठ बोलकर वहां से वापस आई थी। मैंने कहा कि, वंदना दी से मिल लेती हूं। फिर हमलोग टाटा जाएंगे।

इस बात की खुशी है कि मैं उनसे मिली, यह मेरा सौभाग्य रहा। उन्होंने अपने जीवन-काल में बहुत ही अच्छे और नेक काम किए इसलिए ईश्वर ने उन्हें HOLY THURSDAY पवित्र गुरुवार को अपने पास बुला लिया और उनका अंतिम संस्कार GOOD FRIDAY के दिन शुभ शुक्रवार को होना, शुभ संकेत है।

एक शिकायत उनसे थी, जो कर नहीं पाई। खुली किताब की सफ़्हे उलटते रहते हैं। बहुत अंदर तक जला देती है वह शिकायते जो बयां नहीं होती। वजह पूछने का मौका नहीं मिला।

दुनिया उन्हें आदिवासी भाषा खड़िया और हिंदी की साहित्यकार के रुप में जानते हैं।

रोज दी एक बेटी, एक बहन, एक पत्नी, एक मां से शिक्षिका, विचारक, साहित्यकार, कवयित्री और राजनीतिज्ञ की भूमिका बहुत ही सफलतापूर्वक निभाई और पता नहीं क्या-क्या..थीं... वह बात अलग है कि राजनीति में उन्हें वह सफलता प्राप्त नहीं हुई।

सेवानिवृत्त होने के बाद वह पूरी तरह से महिलाओं के हक-अधिकार के लिए काम करती रहीं, इसी से संबंधित 'संवाद' द्वारा प्रकाशित 'आधी दुनिया' पत्रिका

की आखिरी समय तक संपादक बनी रहीं। वह एक बंद अनफोल्ड किताब की तरह थी, क्योंकि उनकी सतहें जितनी उलटते हैं, उतने नए शब्द और साथ जुड़ते जाते हैं। अंत होने का नाम ही नहीं लेती।

30 अप्रैल 2025 को 'संवाद' परिवार के द्वारा श्रद्धांजलि सभा के आयोजन कार्यक्रम में मुझे शामिल होने और बोलने का मौका मिला, लोगों से उनके बारे में सुनकर मैं इतनी भावुक हो गई कि कुछ बोल ही नहीं पाई।

उसके बाद उनकी बेटी वंदना टेटे ने अपने बचपन की दिनों को याद करते हुए बताया कि कैसे रोज दी ने अपने काम और बच्चों को संभाला। उन्होंने बताया कि वह विद्यालय के हॉस्टल की वार्डन भी थी। उसी दौरान कैसे उनके विरोधियों ने उनके छवि को धूमिल करने के लिए गलत आरोप लगाए, फिर भी वह बहुत ही धीरज से भावुक हुए बिना कोई ग़लत कदम नहीं उठाया और आगे बढ़ गई।

हम कह सकते हैं कि रोज दी ने आदिवासी महिला ही नहीं सभी महिला साहित्यकारों का सृजन किया। हिंदी और क्षेत्रीय भाषा के साहित्यकार न सिर्फ़ अपनी लेखनी से समाज को जागरूक करते हैं, बल्कि वह साहित्य की परंपरा को भी नए आयाम दे जाते हैं। उनकी रचनाओं को पढ़ कर युवाओं में नई चेतना का विकास हुआ।

खड़िया भाषा-भाषी के लिए एक मार्गदर्शक बनकर रास्ता दिखाने का काम किया। छात्रों को सार्थक लक्ष्य निर्धारित करने और योग्यताएँ विकसित करने के लिए प्रोत्साहित करने का काम किया है।

समाज के प्रति साहित्यकार का जो दायित्व होता है, उन्होंने बखूबी निभाया है। सामान्य नहीं, बल्कि सर्वसामान्य से हटकर एक जिम्मेदार संवेदनशील सामाजिक नागरिक का फर्ज अदा किया।

मार्गदर्शक लोगों को सलाह, सुझाव और व्यावहारिक सहायता देने की प्रथा को आगे बढ़ाते हैं ताकि वे जीवन में सर्वोत्तम मार्ग अपना सकें। यह व्यक्तियों को उनकी क्षमता की खोज करने और उसे विकसित करने में मदद करने की प्रक्रिया को संदर्भित करता है।

जिस व्यक्ति को उचित मार्गदर्शन प्राप्त होता है, वह निश्चित रूप से समाज में महत्वपूर्ण योगदान देता है। उनमें से एक रोज दी थी। यह सब उन्हें अपने पिता स्वर्गीय प्यारा (मास्टर) केरकेट्टा के सानिध्य से विरासत में मिला था। जो एक शिक्षाविद्, समाज सेवक और राजनीतिज्ञ थे। उन्होंने सिमडेगा में शिक्षण संस्थानों का जाल बुनने का काम किया था।

उस परम्परा को रोज दी ने आगे बढ़ाया। उन्हें समाज के सामने जीवित रखकर उत्कृष्ट काम किया।

रोज दी को सहृदय आभार और अंतिम जोहार।

विनम्र श्रद्धांजलि!

अपनी कलम से जल-जंगल-जमीन, महिला और झारखण्डी अधिकारों को वृहद मुकाम देने वाली प्रसिद्ध लेखिका, कवयित्री और समाज सेविका आदरणीय डॉ. रोज केरकेट्टा जी के निधन का पीड़ादायक समाचार मिला।

रोज दी ने हिंदी के साथ-साथ खड़िया भाषा में भी कई पुस्तकें लिखी थी। उनका निधन साहित्य जगत और आदिवासी समाज के लिए अपूरणीय क्षति है। मरांग बुरु दिवंगत आत्मा को शांति प्रदान कर शोकाकुल परिवारजनों को दुःख की यह विकट घड़ी सहन करने की शक्ति दे।

रोज दी आज हमारे बीच नहीं हैं मगर उनके विचार, उनकी लेखनी और उनकी जीवनशैली हमें हमेशा प्रेरणा देते रहेंगे।

अंतिम जोहार रोज केरकेट्टा जी।

- हेमंत सोरेन

मुख्यमंत्री, झारखंड

साभार : फेसबुक

रोज दी के अधूरे सपनों को पूरा करना है

कोर्दूला कुजूर

रोज दी ने अपने जीवन के आधे से ज्यादा समय को समाज के लिए समर्पित किया।

रोज दी ने हमेशा हमें लिखने के लिए प्रेरित किया। वो हमेशा कहा करतीं थीं कि अपने समाज के लिए कुछ करना है तो कलम पकड़ो, लिखना सीखो, बोलना सीखो और खामोशी तोड़ो। जिस दिन तुम लिखना और बोलना सीखोगे, उस दिन तुम पर उंगली उठना बंद हो जायेगा। अपने समाज की उन सारी चीजों को ढूंढने और समेटने (डॉक्यूमेंट) का काम शुरू करो, लोक कहानी और कथाओं पर काम करो, अपने इलाके के बच्चों के खेलों को भी सामने लाओ। बकायदा उन्होंने अपने एक लेख में बच्चों के कई खेलों को शामिल भी किया।

उन्होंने जल, जंगल, जमीन को लेकर भी काफी संघर्ष किया।

लम्बे समय से आदिवासी समाज में चल रहे, पिता की संपत्ति पर बेटी के अधिकार को लेकर उनकी कलम प्रखरता से चलती रही और इसके लिए उन्होंने अपने कार्यकाल के आखिरी समय तक सामने आकर उसका विरोध किया तथा तथाकथित समाज के ठेकेदारों की आंख खोलने का काम भी किया।

उन्होंने इन ठेकेदारों से सीधे तौर से सवाल किया कि आदिवासी समाज की जमीन एक महिला के दूसरे समाज में जाने से कितनी गई और शराब के कारण कितनी जमीन दूसरों के हाथ में गयी?

रोज दी हमेशा से जिन्हें जैसे समझती थीं, काम की ज़िम्मेदारी भी उसी तरह देना चाहती थीं। जीवन के आखिरी समय में जब उनका शरीर ज्यादा थकने लगा था और आवाज लड़खड़ाने लगे थे, उनकी चिंताएं और परेशानियां भी बढ़ने लगी थीं।

उनका कहना था कि गांव से शहर आने वाली लड़कियों के लिए, चाहे वो स्टुडेंट हों अथवा किसी भी तरह के कामगार, उनके लिए हर शहर में वर्किंग हॉस्टल की अत्यधिक आवश्यकता है। हम सबों की ओर इशारा करते हुए उनका कहना था कि ये वर्किंग छात्रावास तुम लोग चलाओ। इसके लिए घर तलाशने में ज्यादा परेशानी नहीं होगी, तुम लोग मिलकर ये काम करो। यदि ये काम कर सकती हो तो लड़कियों का जीवन और पैसा दोनों बचेगा।

रोज दी ने अपने अस्वस्थता के समय और झारखंड बनने के बाद, कौशल विकास के नाम से लड़कियों को हाउसकीपिंग और अन्य प्रशिक्षण देकर, कुछ बाहर की महिलाओं द्वारा छात्रावास का संचालन कर उनका आधा पैसा खुद रखना – इसको बहुत नजदीक से देखा था।

'अभियान' एवं 'संवाद' में लम्बे समय तक एक साथ काम करते हुए हमने बहुत सारे कामों को, और काम करने के तौर - तरीकों को उनसे सीखा। सामाजिक क्षेत्र में काम करने के लिए, हर परिस्थिति का सामना करने हेतु हिम्मत और साहस उन्हीं से मिला। वो हमारे लिए सिर्फ रोज दी नहीं थीं, वो हमारे लिए मां थी, एक मंजी हुईं शिक्षिका थीं और एक अगुवा थीं।

आज वो हमारे बीच नहीं हैं, इस सच्चाई को जानते हुए भी हमें लगता है कि वो कुछ समय बाद ठीक हो जाती और हमारे बीच कुछ वर्षों तक और रहती, तब हम भी इस क्षेत्र में और अधिक परिपक्व हो जाते। खैर, जाने वाले को हम नहीं रोक सकते, और जीवन की यही सच्चाई है।

रोज दी को मेरा आखिरी हूल जोहार और सस्नेह श्रद्धांजलि। ■

रोज मौसी : संघर्ष, संवेदना और सृजन की प्रतीक

रोजालिया तिर्की

रोज केरकेट्टा जनजातीय भाषा खड़िया और हिन्दी की प्रमुख लेखिका, शिक्षाविद, आंदोलनकारी और मानवाधिकार कार्यकर्ता थीं। उन्होंने अनगिनत कविता, कहानियों की रचना की। वो भी गाँव घर के सारे हकीकत बातें जो हर आदमी अपने दैनिक जीवन में जूझता है, उसे कहानी के रूप में गढ़ती थीं। बहुत लोग गाँव के माहौल में जीवन जीता है, लेकिन रोज केरकेट्टा का जीवन रचनात्मक जीवन था। उन्होंने अपने परिवार के साथ-साथ समाज को गड़ा हुआ धन देकर हमेशा के लिए ईश्वर को प्यारी हो गई। इससे समाज को बहुत बड़ी क्षति तो हुई है, लेकिन उसे रोका भी नहीं जा सकता था। उनकी कहानी 'पगहा जोरी जोरी रे घाटो' है, उसमें बचपन के चित्रण का व्याख्यान बहुत ही सटीक है। हम भी कभी इस तरह के घाटो पक्षी को देखकर ऐसे ही किया करते थे। कहानी पढ़कर अपने बचपन की यादों से मन को खुश कर जाती हूं।

रोज केरकेट्टा से मेरी मुलाकात लगभग 2000 ई. में सामाजिक कार्य क्षेत्र के कार्यों के दौरान में हुई थी। ऐसे तो 1990 ई. में जब मैं 10 वीं बोर्ड का परीक्षा लिखने के लिए गाँव सिकरियाडाँड़ चोगो टोली से सिमडेगा आई, तो प्यारा लॉज में ही डेरा डाली। जो एस एस स्कूल, सिमडेगा के पीछे मौजूद है। वहाँ रहते-रहते प्यारा लॉज के जड़ और तना से परिचित हुई और ये रिश्ता घरेलू रिश्ता बन गया। उसी समय से मैं रोज केरकेट्टा को प्यार से रोज मौसी बोला करती थी। उस समय रोज केरकेट्टा के बारे बहुत चर्चा हुआ करती थी। परन्तु मैं इन सारी बातों से अनभिज्ञ थी। लेकिन जब मैं 2000 ई. में राँची आई और 'अभियान' संस्था में कार्यकर्त्ता के रूप में जुड़ी तो संस्था, संगठन, महिला संगठनों के बैठक, धरना, प्रदर्शन, रैली व हर गतिविधियों में प्रो. मालंच घोस, किरण दी, चायना दी,

वासवी, दयामनी दी, प्रो. माया प्रसाद, प्रो. रोज केरकेट्टा से मुलाकात होने लगी। सामाजिक कार्य के क्षेत्र में जैसे – नारी आंदोलन एवं महिला हिंसा, बलात्कार, अत्याचार के खिलाफ उच्च स्तरीय जाँच की माँग को लेकर अवाज उठाने में संगठन को रोज केरकेट्टा दिशा देती थीं।

मुझे याद है जब बरियातू के एक अपार्टमेन्ट में घरेलू नौकरानी को मार कर तीन तल्ला से फेंक दिया गया था, और उसे आत्महत्या साबित करना चाह रहे थे, उस समय 'नावो' के द्वारा त्वरित कार्रवाई हेतू टीम बनी थी। और उस टीम के तहत रोज केरकेट्टा के अगुवाई में छान-बीन करने जाने का मौका भी मिला था। छान-बीन कर न्याय दिलाने और सरकार को उच्च स्तरीय जाँच का दबाव भी बनाया गया था। उस समय रोज केरकेट्टा द्वारा मामले की छान-बीन बहुत गहराई से की गई थी। इतना तक की सुसाईड नोट का लिखावट और स्पेलिंग के आधार पर वर्तमान समय के स्कूल में झ, भ, छ, लिखने कैसे सिखाया जाता है या नहीं? काफी गहराई से अध्ययन किया गया था। ताकि मृतका को न्याय मिल सके।

इस तरह से कई अनुभव हैं जिससे मैं धीरे-धीरे अपने कार्य के क्षेत्र में आगे भी बढ़ते गई और उनसे काफी सीख मिली। ■

डॉ. रोज केरकेट्टा से रोज दी बनने का सफ़र

सीमा

डॉक्टर रोज केरकेट्टा जिन्हें हम प्यार से रोज दी कह कर बुलाती थी, वह रोज दी आज हमारे बीच नहीं हैं, आज बस उनकी यादें हैं, सो, आज मैं सबों के साथ उन्हें ही साझा करना चाहती हूं। रोज दी से मेरी पहली मुलाकात एक मीटिंग के दौरान हुई थी, बहुत ही सहज एवं सरल व्यक्तित्व के साथ उनका परिचय हुआ। सादगी की एक जीती जागती मिसाल थीं। अपनी बातों को बहुत ही सरल भाषा में मजबूती के साथ रखना उनके व्यक्तित्व की विशेषता थी।

रोज जी ने पूर्व में 'जुड़ाव' एवं वर्तमान में 'संवाद' द्वारा प्रकाशित 'आधी दुनिया' पत्रिका का सफल संपादन किया। पत्रिका को एक मुकाम तक पहुंचाने में रोज जी के साथ 'आधी दुनिया' की पूरी टीम सराहना के पात्र हैं। रोज दी आदिवासी समाज की एक मजबूत हस्ताक्षर थीं। रोज दी आदिवासी भाषा खड़िया और हिंदी की एक प्रमुख लेखिका, शिक्षाविद, आंदोलनकारी एवं मानवाधिकार की वकालत करने वाली कार्यकर्त्ता थीं। अपने साहित्यिक एवं सामाजिक योगदान के लिए इन्हें प्रभावती सम्मान, रानी दुर्गावती सम्मान एवं अयोध्या प्रसाद खत्री सम्मान जैसे पुरस्कारों से नवाजा गया।

रोज जी ने आदिवासी भाषा, साहित्य, संस्कृति और महिला अधिकार के मुद्दों पर देश-विदेश की यात्राएं की एवं व्याख्यान भी दिए। इनकी कहानी संग्रह 'पगहा जोरी जारी रे घाटो' संघर्ष की जीती जागती मिसाल है। इन्होंने हिंदी से एम.ए. एवं पीएचडी भी किया। इन्हें राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर बहुत सम्मान एवं प्यार मिला। रोज दी आदिवासी समुदाय की एक संघर्षशील सरल एवं ज्ञान से भरपूर महिला थीं। इन्होंने आदिवासी महिलाओं के उत्पीड़न, विस्थापन, पलायन, शिक्षा, जेंडर संवेदनशीलता पर लगातार काम किया। अंत में रोज जी से जुड़ा एक अनुभव जरूर साझा करना चाहूंगी। 'आधी दुनिया' पत्रिका के 20 वर्ष पूरे होने पर रांची स्थित एस.डी.सी. में एक कार्यक्रम रखा गया था। उस कार्यक्रम में 'आधी दुनिया' पत्रिका के बदलते स्वरूप पर विशेष रूप से चर्चा हो रही थी। सभी लोगों ने पत्रिका के लगातार विकसित होते स्वरूप पर अपनी अपनी बातों को रखा। पत्रिका ने संघर्ष से रचना का जो सफर तय किया था वह आज भी जारी है। 'आधी दुनिया' पत्रिका को लेकर कार्यक्रम चल रहा था तो स्वाभाविक था कि रोज जी ने अपनी बातों को रखा। उन्होंने बताया कि किस प्रकार आदिवासी समाज में महिलाओं का जीवन कितना कठिन होता है, लेकिन इन कठिनाइयों को पार कर के कुछ करने का जज्बा ही जीवन है। पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं का जीवन ज्यादा कठिन होता है क्योंकि महिलाओं को हमेशा दोयम दर्जे का माना जाता है। रोज दी अपने बातों को जब रख रही थी तो उनकी आवाज में एक लड़खड़ाहट थी जो उम्र के साथ अक्सर हो जाती है लेकिन आवाज की यह लड़खड़ाहट उनके विचारों को रखने में कहीं से भी बाधा नहीं पहुंचा रही थी। उम्र एवं स्वास्थ्य की परेशानियों को मात देती हुई एक सशक्त आवाज हमारा मार्गदर्शन कर रही थी। वह दृश्य आज भी मन को भावुक कर देता है।

रोज दी ने जिंदगी के हर पल को जिया और दूसरों को जीने की प्रेरणा देती रहीं। उनके जीवन का हर क्षण औरों के लिए समर्पित रहा। समाज में होते महिलाओं के प्रति अत्याचार का विरोध कर महिला अधिकार की वकालत करना एवं समाज को आगे बढ़ाने की बात करना रोज दी की पहचान थी। रोज दी अपने नाम के भी अनुरूप थीं। जिस प्रकार गुलाब (रोज अंग्रेजी में गुलाब) का एक फूल अपने खुशबू से वातावरण को सुगंधित कर देता है, उसी प्रकार रोज दी ने अपने विचारों से समाज को समृद्ध बनाया और हमेशा जीवन को आगे बढ़ाने की प्रेरणा दी। रोज दी को हूल जोहार! ■

डॉ. रोज केरकेट्टा : स्मृति शेष

शशि बारला

वह 15 अप्रैल का दिन था जब हमलोगों को यह समाचार मिला कि रोज दी की तबीयत अब कुछ ज्यादा ही खराब हो गई है। हम सभी 'संवाद' के साथी उनको देखने बरियातु स्थित उनके घर गए। उनकी स्थिति ऐसी नहीं थीं कि वे किसी से बात कर सकतीं। वे सिर्फ हमारी आवाज ही सुन रही थीं। कोई तरल पदार्थ निगलने में भी उन्हें कठिनाई हो रही थी। उनकी ऐसी स्थिति देखकर हम सभी विचलित हो रहे थे, क्योंकि डॉक्टरों ने भी जवाब दे दिया था। हम ऐसे ही वहां से वापस आ गए। उसके दो दिन बाद 17 अप्रैल को उनके मृत्यु की सूचना हम तक पहुंची। हम स्तब्ध तो नहीं थे, पर उदासी का माहौल 'संवाद' कार्यालय में पसर गया। 'संवाद' संस्था की ट्रस्टी का लंबी बीमारी के बाद देहांत सभी को तोड़नेवाला था।

आज जब रोज दी हमारे बीच नहीं हैं हमें हर क्षेत्र में मौजूद चुनौतियां और अधूरे कामों की लिस्ट हमेशा सामने दिखलाई पड़ती है। बीते कुछ सदी तक उन्होंने एक सतत् (सुदीर्घ) लंबी जद्दोजहद के दौरान महिलाओं के लिए अपनी मनोभावों को अभिव्यक्त करने की जो कोशिश की हैं उनसे विभिन्न पारंपरिक और रूढ़िवादी विचारधाराओं को सोचने के लिए मजबूर कर दिया है। रोज दी की इन्हीं कोशिशों के चलते बहुत सारी रूढ़िवादी प्रवृत्तियां और शक्तियां बेपर्दा होती गईं। उन्होंने महिलाओं की समस्याओं पर उंगली रखने की लगातार कोशिश की और अपने लेखन के माध्यम से उन मुद्दों को सामने रखा।

रोज दी (डॉ. रोज केरकेट्टा) से पहली मुलाकात 'संवाद' के कार्यालय में हुई, उस समय 'संवाद' का कार्यालय वर्द्धमान कंपाउड में था। उन्होंने मेरी शिक्षा, पिछले काम का अनुभव और परिवार के बारे में पूछा। एक अभिभावक के रूप में उनको देखकर प्रसन्नता हुई और आश्चर्य भी लगा कि 60 वर्ष के बाद अर्थात् रिटायरमेंट

के बाद अधिकांश नौकरीपेशा लोग अपना समय घर में बिताने में लगाते हैं, वहां रोज दी अपना समय समाज के लिए दे रही थीं। उनके काम करने की जिजीविषा किसी को भी प्रेरित कर सकती है। जबतक उनका स्वास्थ्य ठीक था, वे प्रायः रोजाना ही ऑफिस आती थीं। कार्यालय के प्रत्येक सदस्य से उनके परिवार के सभी लोंगों का हाल-चाल जानना उनकी रूटीन में शामिल था। यों कहें तो 'संवाद' के प्रत्येक स्टाफ का परिवार उनका अपना परिवार था, चाहे वह मधुपुर हो, या रांची का कार्यालय हो। एक ट्रस्टी के रूप में उन्होंने सबका ख्याल रखा।

वे जब भी 'संवाद' के कार्यालय में आतीं हमेशा कुछ न कुछ लिखती-पढ़ती रहतीं। उनसे हमें भी प्रेरणा मिलती। एक बार वो हमलोगों (श्रावणी और मैं) को लेकर हजारीबाग गईं। वहां हमें सिस्टर पिलार और डॉ. मेबल से मिलवाया और उनके बारे में बहुत सारी घटनाओं का जिक्र किया। डॉ. मेबल का अस्पताल भी हमें दिखलाया। दूसरे दिन वहां से वापस लौटने के बाद कार्यालय आकर उन्होंने लेख लिखना शुरू किया। और मुझे कहा कि वहां हमलोगों ने जो देखा और समझा, उसे लिखकर दो, मैं उसे लेख बनाकर 'आधी दुनिया' मैगजीन में डालूंगी। मेरी स्थिति अजीब हो

गई, क्योंकि मुझे लेख लिखना नहीं आता था। रोज दी मेरी स्थिति को भांप गई, उन्होंने कहा – जैसे भी लिखो, मैं उसे बना लूंगी। मैंने जैसे-तैसे करके लिख तो दिया, पर रोज दी उसे एक अच्छा लेख बनाकर मैगजीन में जगह दी। लेखन का यह मेरा पहला अनुभव था। चूंकि उस समय शिशिर दा (टुडू) भी कार्यालय में उनके सामने वाले टेबल में बैठते थे, वे बोले – लिखना तुम तभी कर सकती हो, जब तुम ज्यादा पढ़ोगी। इसलिए अधिक से अधिक पढ़ो। उसके बाद से 'आधी दुनिया' मैगजीन में लिखना शुरू किया, जो आज तक जारी है। शाम को कार्यालय से घर लौटने के क्रम में डंगरा टोली चौक तक वो साथ में आती थी। फिर ऑटो से बरियातु चली जाती थीं। इस दौरान भी बहुत सी घटनाओं को बतलाते हुए चलतीं, जो मेरी जानकारी का हिस्सा हुआ करता था।

शिशिर दा एक बात हमेशा बोलते थे कि आदिवासी लेखकों में रोज दी के बाद गद्य लेखन में उस जैसा कोई नहीं है। रोज दी पुरूषों की दया और सहानुभूति से परे महिलाओं के संघर्षों, आकांक्षाओं और स्वप्नों को सामने लाने के लिए लेखन को अपना हथियार बनाया। पितृसत्ता के षडयंत्र और महिला छवि दोनों दृष्टिकोणों को साथ-साथ रखकर जटिलता को उसके पूरेपन से पकड़ने की कोशिश उन्होंने की थी। उनका सारा प्रयास इस ओर था कि नई सदी में झारखंडी समाज नए मूल्यों, नए संबंधों, नए व्यवहार और नई मानसिकता की ओर अग्रसर होगा।

उनके साथ अनेक कार्यक्रमों और ट्रेनिंग में जाने का अवसर मिला, जिसमें उनकी तत्परता हमेशा दिखाई देती थी। ट्रेनिंग के समय वे प्रतिभागियों से भी पहले तैयार होकर ट्रेनिंग हॉल में पहुंच जाती थीं। कोई प्रतिभागी चुप न रहे, सभी लोग बोलें, ऐसा वह कोशिश करती थीं। किसी भी ट्रेनिंग में वे शुरूआत इस तरह से करती थी कि सहज ही मुद्दे सामने आ जाते थे और प्रतिभागियों को समझने में आसानी भी होती थी। इसी तरह एक बार एच.पी.डी.सी., बहुबाजार, रांची के हॉल में एक कार्यक्रम 'संवाद' की तरफ से रखा गया था। उस कार्यक्रम में मैं अपनी भागिनी को भी लेकर गई थी। कार्यक्रम के अंत में मेरी भागिनी उससे मिलीं, पढ़ाई को लेकर रोज दी से उसकी काफी बातचीत हुई। घर आने के बाद वह मुझसे बोली – 'मौसी वो तो ocean of knowledge हैं।' मैं सुनकर हंस दी।

एक बार की घटना मुझे याद है जब 'नावो' के तहत एक कार्यक्रम करने के लिए वह उस समय की तत्कालीन मंत्री जोबा मांझी से मिलने उनके आवास पर गई। मंत्री जी ने कार्यक्रम की स्वीकृति देते हुए अपने सचिव से मिलने के लिए कहा। रोज दी हमलोगों को लेकर सचिव से भी मिलीं। सचिव बोले – इतने कम बजट का कार्यक्रम क्यों बनाई हैं, इसे थोड़ा बढ़ाकर अधिक बजट का बनाइए। हमलोगों ने अधिक बजट का बनाकर उसे कल्याण विभाग को दे दिया। वह कार्यक्रम पास हो गया। पर सभी लोग जानते हैं कि सरकार के साथ मिलकर काम करने में पहले अपना पैसा लगाना पड़ता है। कार्यक्रम होने के बाद बिल पास होने पर ट्रेजरी से चेक का भुगतान होता है। इस कार्यक्रम में खर्च के लिए रोज दी अपना पैसा लगा दी थीं। बाद में बहुत मेहनत के बाद उनका पैसा ट्रेजरी से मिल पाया। इस तरह रोज दी अपने खर्च से कुछ कार्यक्रम को करने के लिए हमेशा तैयार रहतीं थीं।

महिला के उस पक्ष को जिसे या तो समाज ने ही बेचारगी के धरातल पर जीने को विवश कर दिया गया या किसी कारणवश अपने परिवारों से बिछुड़ गईं, उन्हें रोज दी ने नकारा नहीं। यहां उन्होंने समाज को नए ढंग से नई चुनौतियों से जीना सिखाया। उन लोगों की समस्याएं विकट थीं, किंतु समाज में अपना एक स्थान बनाने का अदम्य साहस उनमें था। ऐसे तमाम मोतियों को एक सूत्र में पिरोकर एक बड़े परिवार का रूप दिया गया रोज दी के द्वारा। उनके यहां रहने-पढ़ने के लिए बहुत से लोग आए जिन्हें उन्होंने हरसंभव मदद की।

रोज दी का कहना था कि – महिलाओं का विकास एवं उत्थान केवल उसकी स्वतंत्रता संपन्न होने से ही संभव नहीं है। पुरूष मानसिकता और उनके सामाजिक दृष्टिकोण में बदलाव आए बिना एक महिला का स्वतंत्र समर्थ व्यक्तित्व नहीं हो सकता। जीवन की कड़वाहट उसे आज जिस धरातल पर ले आई थी शायद इसकी कल्पना नहीं की जा सकती। ■

अश्रुपूर्ण भावांजलि

श्रावणी

''औरत ने जनम दिया मर्दों को,
मर्दों ने उसे बाजार दिया,
जब जी चाहा मसला कुचला,
जब जी चाहा दुत्कार दिया।''

साहिर लुधियानवी द्वारा 'साधना' फिल्म के लिए लिखा यह गीत, जिसे संगीत दिया है एन. दत्ता ने और गाया है लता मंगेशकर ने। इस तरह के गीत के माध्यम से प्रशिक्षण शिविर भी चलाया जा सकता है? ऐसा प्रशिक्षण केवल रोज दी ही दे सकती थीं। उनका प्रशिक्षण देने का तरीका बहुत ही रोचक होता था। उन्होंने कभी बने-बनाये मॉड्यूल पर प्रशिक्षण नहीं दिया, बल्कि प्रतिभागियों से मिलकर उनकी रूचियां, उनके मनोभाव, उनकी खूबियां एवं उनके तार्किक क्षमताओं को देखकर निर्णय लेती थीं कि प्रशिक्षण कैसे चलाया जाय? फिर सहज और सरल तरीके से विषय वस्तु को सबके सामने रखतीं। उनके बोलने का तरीका, समझाने की तरकीब ऐसी थी कि न बोलने वाले भी सक्रिय रूप से प्रशिक्षण शिविर का हिस्सा बनते चले जाते थे। वह प्रशिक्षण देते वक्त केवल प्रशिक्षक की भूमिका में नहीं होतीं थीं, बल्कि एक दोस्त की तरह लोगों को बतलातीं, सिखलातीं थीं। उनमें धैर्य बहुत था। उन्हें मैं कभी उद्देलित या विचलित होते नहीं देखा। शांत भाव से लोगों की बातें सुनतीं, फिर जवाब देतीं।

सामाजिक सरोकार वाले लोगों के लिए वह सबकी प्रिय रोज दी थीं। सब उन्हें रोज दी कहते तो सबकी देखा देखी मैं भी उन्हें रोज दी कहने लगी। मैं रोज दी जरूर बोलती, पर मेरे मन में उनके प्रति मां जैसा भाव था। सामाजिक रिश्ते के साथ-साथ यह रिश्ता धीरे-धीरे पारिवारिक रिश्ता बन गया। मैं उनसे पहली बार 1994 में, जब 'अभियान' का कार्यशाला रांची में होना तय हुआ था, तब मिली थी। कार्यशाला आयोजन की सारी जिम्मेवारी रोज दी

पर थी। उन्होंने जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषा विभाग में ही कार्यशाला आयोजित की थी। धीरे-धीरे कार्यशालाओं, बैठकों में उनसे मुलाकातें होतीं, तो बहुत कुछ सीखने को मिलता। जानने को मिलता।

उनके सान्निध्य में रहने का मौका, उनसे सीखने का मौका ज्यादा मिलने लगा जब वह ''आधी दुनिया'' का संपादन करने लगीं। उनके साथ रहते हुए मैंने लिखना सीखा। वह कहती थीं, जब तक आपकी अपनी बातें लोगों तक नहीं जायेगी, तब तक लोग कैसे जानेंगे कि आप क्या सोचते हो? वह हमेशा कहती रहती थीं, यदि कुछ लिखना है तो लोगों से मिलिए। उनकी बातों को सुनिये। उनकी पीड़ा को समझिये। तब लिखिये। सुनी सुनायी बातों पर विश्वास न करें, अपनी आंखों से देखी बातों पर विश्वास करें।

रोज दी के साथ मुझे अनेक जगहों में जाने का मौका मिला। वह अपने साथ मुझे हर जगह ले जातीं। जहां भी जाती, वहां नित नया कुछ सीखने को मिलता। नये-नये जगह जाना, नये लोगों से मिलना इससे मेरा भी परिचय का दायरा बढ़ने लगा। आज जब मैं पीछे पलटकर देखती हूं और सोचती हूं तो लगता है कि अगर रोज दी का सान्निध्य न मिला होता, उनका लाड़-दुलार न मिला होता, तो मेरी दिशा व दशा कुछ और होती! सिमडेगा का ठेठईटांगर, केलाघाघ,

खूंटी का मारंगहदा या फिर मुरहू हो या अनगड़ा का सताकी – इन सब स्थानों से मेरा जुड़ाव शायद न बन पाता। उनके साथ रांची से बाहर जाने का मौका भी कई बार मिला। रांची में कोई भी कार्यक्रम हो और रोज दी को यदि आमंत्रण मिला हो, तो अपने साथ मुझे जरूर ले जाती थी। उनको जब भी और जहां भी पुरस्कार मिला, मैं उनके साथ रही। केवल ''रानी दुर्गावती' सम्मान' के समय भोपाल में किसी कारणवश न जा सकी। ''अयोध्या प्रसाद खत्री'' सम्मान से जब उनको मुजफ्फरपुर में सम्मानित किया जा रहा था, तब मैं उनके साथ गयी थी। राजभवन में उन्हें सम्मान मिला हो या यूनिवर्सिटी में मैं उनके साथ जरूर गयी। उनके साथ बितायें क्षणों को यदि लिखने बैठूं तो एक समूची किताब भी कम पड़ जायेगी। उन्होंने मुझ जैसी अनेक महिलाओं को गढ़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। उन्हें एक पहचान दिलायी। एक मायने में वह समाज परिवर्तन के लिए लोगों को गढ़ने वाली एक शिल्पकार थीं, जो अंतिम समय तक अपने शिल्प से प्रेम करती रही।

रोज दी केवल महिला आंदोलनकारी ही नहीं थी, बल्कि झारखंड अलग राज्य के आंदोलन में भी उन्होंने सक्रिय भूमिका निभायी। समता और न्याय के लिए आजीवन संघर्षरत रहीं।

जब झारखंड अलग राज्य बना और झारखंड महिला आयोग का गठन हुआ, तब हम सबों को आशा थी कि रोज दी को अवश्य आयोग का अध्यक्ष बनाया जाएगा, परंतु तत्कालीन सरकार ने ऐसा नहीं किया। रोज दी पद और प्रतिष्ठा की चाह न रखते हुए, हमेशा ही पीड़ित महिला के पक्ष में खड़ी रहती थीं और जब तक उसे न्याय न मिलता, उसे हर संभव सहायता प्रदान करती रहती थीं।

साहित्यकार, कथाकार, कवयित्री के साथ-साथ वह एक संवेदनशील महिला थीं। मेरे लिए तो वह मेरी गुरु, मार्गदर्शक और अभिभावक आजीवन रहीं। एक बार की घटना है – मैंने शायद शेखर को किसी कारण कह दिया कि इनको रंग का पता ही नहीं चलता है। उस समय तो रोज दी ने मुझे कुछ नहीं कहा, पर बाद में अकेले में बुलाकर समझाया कि किसी की कमी को ऐसे नहीं कहना चाहिए, इससे सामने वाले को दुःख पहुंचता है। उनकी बातों ने मुझे इतना प्रभावित किया कि मैं अब जब भी, किसी को कुछ बोलती हूं तो उनका चेहरा सामने आ जाता है और उनकी दी हुई सीख मुझे याद आ जाती है।

वह सबसे प्रेम करती थीं। मेरे दोनों बच्चों को उनसे बहुत स्नेह मिला। वह उनके लिए 'रोज नानी' थी। मेरा छोटा बेटा शुभम हमेशा उन्हें ''रोज दी मौसी नानी'' कहता और रोज दी 'तुम मेरे नाम के साथ एक गज का संबोधन लगाते हो' कहती। बाद के दिनों में जब वह ऑफिस नहीं आ पा रही थीं, तब जब भी मैं उनसे मिलने जाती, तब वह बच्चों का हाल चाल पूछतीं – वे क्या कर रहे हैं? कहां रह रहे हैं? यह जानने की जिज्ञासा उनमें बनी रहती थी। उनके देहांत के दो दिन पहले यानी 15 अप्रैल को जब हम लोग उनसे मिलने गये, उस समय उनकी स्थिति काफी गंभीर थी। आंखें बंद थीं, पर उनका मस्तिष्क सक्रिय था। वंदना जी ने जब कहा, – 'देखो, श्रावणी आयी है। नहीं पूछोगी कि 'आधी दुनिया' छपी या नहीं? या शुभम कहां है, क्या कर रहा है?'' वह बोल नहीं पा रही थी पर उनका बॉडी लैंग्वेज से लगा कि वह सुन रही हैं एवं मुझसे पूछ भी रही हैं। मुझे अब भी लगता है वह हम सबके समीप हैं, कहीं गयी नहीं हैं। पर सच को भी स्वीकार करना होगा कि अब उनकी मधुर आवाजें कानों को सुनाई नहीं देगी – ''श्रावणी, कंटू को भेजिए लीची ले जायेगा'' या ''उमेश को भेजिए मैं ऑफिस आऊंगी।''

समाज परिवर्तन एवं साहित्य के क्षेत्र में उनके योगदान को देखते हुए मन में आशा थी कि उनका अंतिम संस्कार शायद राजकीय सम्मान के साथ होगा, पर वह हो न सका। यह हमारे हाथ में भी नहीं था। उनके कार्यों एवं समाज में उनके योगदान को देखते हुए, पद्मश्री के लिए उनके नाम की सिफारिश सरकार के तरफ से जानी चाहिए। सभी महिलाओं को इसके लिए संगठित होकर आवाज उठानी पड़ेगी।

उनके विचार एवं सीख हमारे लिए अनमोल थाती है। वह विचारों से, अपनी लेखनी से हम सबों के साथ हमेशा जुड़ी रहेंगी। उनके साथ बिताये हर लम्हें हमें ताउम्र याद रहेगी। उन्हें भुलाया नहीं जा सकता है। रोज दी, आप जहां भी हो, वहीं से अपना लाड़-दुलार और मार्गदर्शन देते रहिएगा।

आपको हूल जोहार और अश्रुपूर्ण भावांजलि। ■

रोज माँ : हरे महुआ गाछ की तरह जीवित स्मृति

जसिन्ता केरकेट्टा

किसी के जाने, विश्राम करने या किसी के लंबे समय से विश्राम करने या प्रकृति में मिलने को हम आदिवासी नजरिये से इस तरह से देखते हैं कि कितना अच्छा होता अगर कोई व्यक्ति लंबे समय तक जिंदा रहता, तो हम उससे लंबे समय तक सीख सकते और उससे लंबे समय तक काम ले सकते। उनके जाने और प्रकृति में मिलने को बहुत दुखी मन से निराशाजनक रूप में देखते हैं। हाल के दिनों में मैंने इस जाने को इस रूप में आत्मसात किया है कि जिसका भी शरीर विश्राम की ओर जा रहा है, वह नयी पीढ़ी को याद दिलाता है कि जो ऊर्जा हमारे पास है, जो जीवन हमारे पास है, जो दिन हमारे पास बचे हैं, जो भी शरीर हमारे पास हैं, उनके महत्व को हम समझ पाएं। जितनी ऊर्जा हमारे पास बची है, जीवित रहते हुए हम उसका कितना प्रयोग कर पाएं, और प्रकृति में जो मिल रहे हैं, उनका जो जीवन मूल्य है, उसे हम कैसे केन्द्र में रखकर काम कर सकें। जो भी लोग हमारे आसपास से, अगल-बगल से जा रहे हैं, मैं स्वीकार नहीं कर पा रही हूं कि वे नहीं हैं। मैं अकेले रहती हूं, काम करती हूं, तो इन कई सालों में मुझे हमेशा अहसास होता है कि मैं किसी को भी अपने से अलग करके देख नहीं पा रही हूं। मुझे हमेशा ऐसा लगता है कि वे प्रकृति के साथ मिलकर अदृश्य रूप में केवल हमें दिखाई नहीं पड़ रहे हैं, वे सक्रिय रूप में एक बड़ी भूमिका निभा रहे हैं और हम उसे संकुचित और छोटा सा जीवन इंसान के रूप में मान रहे हैं। उसमें हमारी जो भूमिका बन रही है, उसे हम जीवित रहते हुए कैसे कर पाएं। वे नहीं हैं, ऐसा मैं नहीं कह सकती हूं। वे केवल दिखाई नहीं पड़ रहे हैं, तो मुझे याद आता है कि हमारे बीच से जो प्रकृति में मिल रहे हैं, हम और क्या-क्या भूमिका निभा सकते हैं।

मैं रोज मां को भी उसी तरह से महसूस कर रही हूं कि वह हैं, सिर्फ दिखाई नहीं पड़ रही हैं। बहुत बार ऐसा होता है कि उनके जीवित रहते हुए हम उन्हें ज्यादा मिल नहीं पाते थे, पर वे हमारे दिल-दिमाग में जिंदा रहते हैं। वे अदृश्य हैं और प्रकृति के साथ मिलकर बड़ी भूमिका निभा रही हैं। यहां पर यह जिम्मेदारी याद आती है कि हमारे जो पुरोधा लोग हैं, जो समय या असमय चले जा रहे हैं, जैसे रामदयाल मुंडा, सारा जीवन कार्य करते चले गये – ''जे नाची से बाची'' वाक्य में उनका क्या विचार था, क्या भावना थी, हम उनके विचारों, भावनाओं को ढूंढना चाहते हैं, पर मिल नहीं पा रहे हैं। उन विचारों और भावनाओं को समझने के लिए हम उनमें और क्या-क्या भूमिका निभा सकते हैं, यह महत्वपूर्ण है।

शुरुआत में मैं जिनसे मिलती रही हूं, सीखती रही हूं, उनमें रोज मां हैं, डॉ. रामदयाल मुंडा हैं, डॉ. निर्मल मिंज हैं और मैंने उन्हें विशाल पेड़ की तरह देखा है। जब भी उनसे मिलने जाती, कभी उन्होंने नहीं बोला कि हमारे पास समय नहीं है, दूसरे समय में आना। यह समय हमारे विश्राम का समय है। वे हमेशा घर में हमारे साथ बैठते थे। वे समय देते थे, इसलिए शायद मेरे भीतर एक पेड़ हरा रहता है और आज भी जब मैं रोज मां को याद करती हूं, तो भले उनका शरीर बीमार हो गया था, कमजोर हो गया था, लेकिन मेरे भीतर वह एक हरे पेड़ की तरह हैं – एक महुआ पेड़ जिसकी जड़ें बहुत मजबूत हैं, जिसकी डालियां भी मजबूत हैं और लंबे समय तक जिनसे छाया मिलती है, और नयी पीढ़ी को उस विशाल पेड़ को देखने से जो ताकत और उम्मीद मिलती है, मुझे लगता है कि रोज मां अभी भी मेरे अंदर उसी रूप में मौजूद हैं और हमेशा जीवित रहेंगी।

(30 अप्रैल 2025 को रांची में आयोजित श्रद्धांजलि सभा में जसिन्ता केरकेट्टा के वक्तव्य को आलेख के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। – संपादक मंडल)

रोज जी से रोज दी

हेमंत

अपनी डायरी में लिखा एक अंश आपको सुनाऊं? सब आपको रोज दी-रोज दी पुकारते थे और मैं रोज जी कहता था – आपने नोटिस किया? इसी पर मैंने बरसों पहले अपनी डायरी में लिख रखा था :

वह हमारे सामने चुपचाप यूं बैठी थीं, जैसे वह हमें सुनने आई थीं। बैठी थी हम पर आंखें टिकाये, सिर्फ सुनने के लिए, कुछ सुनाने को नहीं।

वह हमें सुन रही थीं, अपनी आंखों से। चुपचाप। मुझे लगा, उनकी शांत नजर बोल रही थी – 'मैं सुन रही हूं, मुझे कुछ बोलने की जरूरत नहीं। मैं कुछ बोलने के लिए सुन नहीं रही। आप भी इसीलिए न बोलें कि मैं सुन रही हूं।'

'...।' मैं उन बोलती नज़रों को देखता रह गया – गुमसुम।

'...न, न। मैं आपको न रोकना चाहती हूं और न बांधना चाहती हूं....।'

बस। फिर, अचानक ऐसा हुआ..! हमें सुनते-सुनते वह सहज भाव से उठीं और चली गयीं! एक एहसास छोड़ कर – खुद को स्व-अधीन रखने के लिए हमें मुक्त करने का एहसास...!

'हां, आप मुक्त हैं। मैं किसी तरह का बंधन नहीं डालती, क्योंकि मैं अपने लिए यही चाहती हूं।'

उस दिन से मैंने अमूमन यही देखा – महसूस किया। उनको आते और बैठते देखता और धीरे-धीरे यह एहसास मुझे छू लेता। वह देर तक सामने बैठकर भी कुछ बोलती नहीं। बीच में वह चुपचाप उठतीं और नजर से ओझल होते न होते हमें सहसा महसूस होता – 'अरे, हम भी उनके स्नेह की परिधि में आ गये! अनायास। और... और उसी में पड़े रहने का मोह पाल लिया – पिंजड़े में कैद पंछी सा, जो दरवाजा खुला पाकर भी बाहर जाकर उड़ना नहीं चाहे!'

लेकिन यह क्या! वह हमें सुनती हैं, हमें अपनी धुन में बहते देखती-गुनती हैं....सहज स्नेह की अपनी परिधि में संजोती-सी! फिर....हमारी धुन में किसी तरह की बाधा दिये बिना चुपचाप उठती हैं और चली जाती हैं। ऐसे जैसे, वह पंछी का मुक्त गान सुन रही थीं... । पंछी मुक्ति का गान सुनाये – इसके लिए मुट्ठी भर चना बिखेरा, कटोरे भर पानी रख दिया। लेकिन गाना सुनते-सुनते शायद महसूस हुआ कि पंछी अपने सुरों में मुक्ति की जगह मोह भर रहा है, 'चना और पानी' की परिधि में गाता पंछी मुक्ति-गीत के बदले मोह-बंधन के गीत छेड़ने लगा, सहज मानवीय स्नेह को पिंजड़ा मान उसीसे प्यार करने लगा, तो वह उठ कर चल देती हैं। मानो यह कहती जाती हैं – 'अव्वल तो मेरी स्नेह-परिधि पिंजड़ा नहीं! तुम भी ऐसा ही जानो। लेकिन अगर तुमने ऐसा मान ही लिया, तो मैं थोड़े न कहूंगी कि तुमने गलत किया या मैंने सही किया! मैं तो सिर्फ दरवाजा खोल देती हूं, ताकि तुम वहां से उड़ जाओ जिसे तुमने पिंजड़ा माना! दरवाजा खुला देखने के बाद भी तुम बाहर नहीं निकले, तो मैंने यही उचित माना कि वहां से मैं ही चल दूं। तब कम से कम तुम इतना तो महसूस कर सकोगे कि मैं अपना पिंजड़ा छोड़कर चली गयी!'

स्नेह-परिधि को कोई पिंजड़ा माने – यह उन्हें स्वीकार नहीं। कोई मान ही ले, तो वह रोकने की ऐसी कोशिश नहीं करतीं कि मानने वाले को ठेस लगे। वह यूं उठ जाएंगी जैसे स्नेह-प्यार की परिधि भी उनकी बनाई नहीं!

रोज जी, उसी समय से, मैं आपको रोज दी कहने लगा था...! कब से? साल याद नहीं। बस, इतना याद है कि मैं परिचिति के दस-बारह साल बाद तक भी आपको रोज दी पुकारने में हिचकिचाता था। ■

हमारे लिए रोज दी हुआ करती थी

प्रिय दर्शन

कभी वे हमारे लिए रोज दी हुआ करती थीं। रांची कॉलेज और पीजी में पढ़ते हुए आते-जाते अक्सर उन्हें क्षेत्रीय भाषा विभाग से निकलते देखता। उनका सौम्य, मृदु-मुस्कुराता चेहरा तब हमें बरबरस आकर्षित करता था। एक दौर में खड़िया में वे अपने काम के लिए जानी जाती थीं। साथ ही वे हिंदी में भी लिखा करती थीं। उनसे जब भी बातचीत होती, वे बहुत संभल कर बोलतीं। जैसे अपने बोले हुए एक-एक शब्द को वे पहले तौल लेती हों। हालांकि इसमें सजगता नहीं, सरलता और सहजता ही दिखती।

कायदे से बाद के वर्षों में उन्हें अश्विनी कुमार पंकज और वंदना टेटे की वजह से हमारे लिए वंदना की मां हो जाना चाहिए था। लेकिन वे रोज दी ही बनी रहीं। यह शायद उस स्वतंत्र व्यक्तित्व का ही बल और फल था जो उन्होंने अर्जित किया था और जिसकी छाप दूसरों पर भी छोड़ी थी।

उनमें अपनी तरह का खुलापन भी था। यह शायद 2012 का साल था जब हम मुजफ्फरपुर में साथ थे। उन्हें अयोध्या प्रसाद खत्री सम्मान मिला था और उनके कृतित्व पर कुछ कहने के लिए मुझे आमंत्रित किया गया था, बल्कि वह वीर भारत तलवार का लगभग आदेश ही था। मैं और तलवार जी दिल्ली से गए जबकि रोज दी, वंदना और संभवतः कुछ और लोग रांची से आए थे। तो मुजफ्फरपुर में कार्यक्रम अच्छे से हुआ। लौटने से पहले हमारे पास एक शाम खाली थी। कहीं घूमने जाने पर विचार हो रहा था। मैंने कहा, चलिए सिनेमा चलते हैं। मैंने कहा कि नक्सल समस्या पर प्रकाश झा की फिल्म 'चक्रव्यूह' लगी हुई है, उसे देखा जा सकता है। लेकिन सिनेमा हॉल जाकर पता चला, वहां तो 'स्टुडेंट ऑफ द ईयर' चल रही है। मैंने कहा, अब यही देखते हैं। हम सब अंदेशे में थे कि

रोज दी इन सबसे झल्ला न गई हों। आखिर वह एक नए दौर की चालू फिल्म थी और हमें लग रहा था कि रोज दी का 'टेस्ट' कुछ पुरानी क्लासिक फिल्मों का होगा। लेकिन फिल्म खत्म हुई तो वे खुश थीं। फिल्म उन्हें पसंद आई थी। हम लोग भी खुश हुए।

बीते साल रांची में वंदना–पंकज से मुलाकात हुई तो वंदना ने बताया कि मां की तबीयत अब अच्छी नहीं रहती। उम्र शायद उनसे एक संघर्ष भरे जीवन की कीमत वसूल रही थी।

उन्होंने बहुत कुछ लिखा – कविताएं भी, कहानियां भी, आदिवासी जीवन, समाज और भाषा पर भी। मैंने कभी उनकी कहानियों पर एक लेख लिखा था। यह ठीक से याद नहीं कि वह कहां छपा था। कल देर रात फाइलों में खोजता रहा, लेकिन नहीं मिला। उनकी कहानियां सरल रेखाओं पर चलती कहानियां नहीं थीं। वे जंगलों-पहाड़ों और अनुभवों की परिक्रमा करती कहानियां थीं – विचार, संवेदना और स्मृति के कई पड़ावों के बीच अपने रेशे बुनती हुई।

जिस समय यह लिख रहा हूं, ठीक उसी समय 85 बरस पुरानी जर्जर देह को अंतिम विदाई दी जा रही होगी। अंतिम सत्य की तरह मृत्यु सबको ले जाती है, लेकिन

स्मृतियों में बसी रूह को नहीं ले जा पाती – मेरे लिए भी वे बची हुई हैं – रांची कॉलेज, सर्कुलर रोड, कचहरी रोड के रास्ते पर अपने में खोई चलती हुई, क्षेत्रीय भाषा विभाग के मुक्ताकाशी मंच पर किसी आयोजन में मृदुता से मुस्कुराती हुई, और सिनेमा देखने के बाद निकल कर हंसती हुई।

सिर्फ कल्पना कर सकता हूं कि अपने अंतिम समय में वे अपनी तकलीफों के बावजूद संतुष्ट रही होंगी। उन्होंने एक लंबी दूरी तय की, रचनारत रहीं और जाते-जाते पाया कि उनकी बेटी उन लोगों में शामिल है जिनसे इन दिनों हिंदी की आदिवासी मेधा और रचनाधर्मिता की पहचान हो रही है और जो इन दिनों बहुत दूर तक अपनी मां की तरह ही दिखती है। फिर जिस आदिवासी संवेदना और प्रतिरोध को वे जीवन भर व्यक्त करती रहीं, वह बहुत सारी चुनौतियों के बावजूद आज पहले से कहीं ज्यादा मुखर है और सम्मानित भी।

रोज दी को अंतिम प्रणाम। ■

सौम्य आवाज़, बुलंद व्यक्तित्व : मेरी रोज आंटी

स्वाति शबनम

कई बार ऐसा होता है कि आप एक वक्त जिनके बहुत करीब रहे हों, रोजमर्रा की आपाधापी में उनसे नियमित मिलना संभव नहीं हो पाता है। मगर कहीं अवचेतन में उनका ख्याल अवश्य रहता है। रोज आंटी, ऐसी ही थीं मेरे लिए। जान पहचान के उनसे मिलने वाले लोगों से मैं अक्सर उनके बारे में पूछ लिया करती थी। आखिरी बार 2020 के दिसंबर में उनसे मिली थी। उस वक्त भी वो काफी कमजोर थीं और लगभग बिस्तर पर ही रहती थीं। उसके बाद जीवन में कुछ ऐसा घटित कि स्वयं को संभावने और उबरने में ही कुछ साल लग गए। इस बीच रोज आंटी भी कमजोर हो गई होंगी, यह सोचकर मन भारी हो जाता था।

मगर बचपन में, बल्कि दसेक साल पहले तक उन्हें सब सक्षम और बुलंद ही देखा था। कुछ घर होते हैं, जो घर अपने जैसे लगते हैं। रोज आंटी का घर भी ऐसा ही एक घर था। जहां हम बैठक ही नहीं बैठते थे, बल्कि पूरे घर में अपनापन महसूस करते थे। सामाजिक और साहित्यिक सरोकार के कारण उनका घर भी एक अड्डा था। मैं अक्सर मां के साथ वहां जाया करती और हमेशा ही उनके सौम्य व्यक्तित्व और संगीतमय आवाज से चकित हो जाती। उस सौम्यता और मधुरता के पीछे कितनी दृढ़ता छिपी थी, यह तो धीरे-धीरे जाना। उनके साथ एक सहज और अपनापन भरा पारिवारिक रिश्ता बना रहा। इसीलिए जब पता चला कि रोज आंटी नहीं रहीं, लगा जैसे एक युग का अवसान हो गया है। उन्हें अंतिम विदाई देने जाना ही था। उनको प्यार करने वाले सभी लोग आपस में एक स्नेह के बंधन में एक-दूसरे से बंधे थे। रोज आंटी सबको किसी न किसी रूप में बांधे हुये थीं – किसी को अपनी कहानियों के माध्यम से, किसी को अपने विचारों के माध्यम से, किसी को स्नेह से, तो किसी का संबल बनकर। ■

रोज दी को अंतिम जोहार!

रणेंद्र

रोज दी को कैसे याद करूं? उनके किन-किन रूपों को याद करूं? यह थोड़ा जटिल प्रश्न है। दरअसल डॉ. रोज केरकेट्टा के व्यक्तित्व के कई-कई आयाम थे। वे एक साथ कई मोर्चों पर सक्रिय रहतीं, पूरे मनोयोग से अपनी भूमिका निभातीं। और उन्होंने अपनी निभाई हर भूमिका में एक पहचान बनाई एक गहरी छाप छोड़ीं। रोज दी एक प्राध्यापिका, भाषाविद्, झारखंड आंदोलन की नेत्री, महिला अधिकारों की पुरोधा, एक्टिविस्ट, कथाकार, कवि, संपादक, एक स्नेही माँ और साथ जुड़ने वालों के लिए सर्वप्रिय दीदी और न जाने क्या-क्या।

तो शुरू से ही शुरुआत की जाए। रोज दी का जन्म 5 दिसंबर 1940 को तत्कालीन रांची जिले के सिमडेगा अनुमंडल के एक छोटे से गांव कसिरा सुंदरा टोली में हुआ था। उनके पिता शिक्षक और अद्भुत समाज सेवी प्यारा केरकेट्टा और माँ मार्था केरकेट्टा थीं। रोज दी ने सिमडेगा कॉलेज से ही स्नातक और राँची विश्वविद्यालय से हिन्दी विषय में स्नाकोत्तर की डिग्री ली। 'खड़िया लोक कथाओं का साहित्यिक और सांस्कृतिक अध्ययन' विषय पर पी एच डी की उपाधि प्राप्त की। उन्होंने अपने कैरियर की शुरुआत स्कूलों में शिक्षण से की, फिर बी. एन. जालान कॉलेज, सिसई में 1977 से 1982 तक हिंदी की प्राध्यापिका रहीं। किंतु जैसे ही डॉ. रामदयाल मुंडा ने मेनेसोटा यूनिवर्सिटी अमेरिका की अपनी व्याख्याता की नौकरी छोड़कर कर आए और रांची विश्वविद्यालय में नए-नए खुले 'जनजातीय क्षेत्रीय भाषा विभाग' की कमान संभाला, तो उन्होंने खड़िया भाषा के अध्यापन के लिए रोज दी को याद किया। रोज दी ने भी बिना देर किए खड़िया भाषा विभाग को संभाला और अध्ययन और अध्यापन हेतु खड़िया भाषा की मूलभूत पुस्तकों का लेखन भी किया। 1982 से दिसंबर 2000 में अपनी सेवानिवृत्ति तक वे

खड़िया भाषा और साहित्य की समृद्धि के लिए पूरे मनोयोग से लगी रहीं। झारखण्ड शिक्षा परियोजना, एनसीईआरटी जैसी जिस भी संस्था ने खड़िया भाषा की पुस्तकों के लेखन में उनकी सहायता चाही, उन्होंने बिना किसी शर्त के उन्हें अपना भरपूर सहयोग दिया।

झारखण्ड आंदोलन में सक्रियता, महिलाओं के हक हकूक की जमीनी लड़ाई, पत्र-पत्रिकाओं में लेखन, संपादन ढेर सारी संस्थाओं की स्थापना से लेकर उनकी गतिविधियों से जुड़ाव आदि-आदि रोज दी की दैनंदिन रूटीन, स्वभाव का हिस्सा बन गए थे। अपनी भौतिक देह त्याग के लगभग ढाई साल पहले गिरने और पैर के चोटिल होने के बाद बिछावन तक सीमित रह जाने के पूर्व तक लगातार व्यस्तता गतिशीलता ही उनकी पहचान थी। वे 'झारखंड नेशनल अलायंस ऑफ़ वीमेन', रांची; 'जुड़ाव', मधुपुर, संताल परगना; 'बिरसा', चाईबासा; 'आदिम जाति सेवा मंडल', रांची; 'झारखंडी भाषा साहित्य संस्कृति, अखड़ा', राँची; 'प्यारा केरकेट्टा फाउंडेशन', रांची की संस्थापक सदस्य थीं और 'संवाद', राँची की संस्थापक सदस्य और अध्यक्ष रहीं।

वैसे तो रोज दी कई पत्र-पत्रिकाओं के संपादन से जुड़ी रहीं, किंतु अपनी संस्था 'संवाद' की त्रैमासिक पत्रिका

'आधी दुनिया' का लगभग 25 वर्षों तक लगातार संपादन किया। अपने अबाध लेखन से उन्होंने खड़िया साहित्य के साथ-साथ हिंदी साहित्य को भी समृद्ध किया। 'पगहा जोरी जोरी रे घाटो', 'बिरुवार गमछा तथा अन्य कहानियाँ', 'खड़िया विश्वास के मंत्र', 'स्त्री महागाथा की महज एक पंक्ति' (आलेख संग्रह) एवं 'प्यारा मास्टर' (जीवनी) उनकी हिन्दी की रचनाएं हैं। खड़िया भाषा में प्रेमचंदाअ लुङकोय', 'सिंकोप सुलोओ', 'लोदरो सोमधि, खड़िया निबंध संग्रह, खड़िया गद्य-पद्य संग्रह, जूझाइर डाँड़ (नाटक संग्रह) आदि आदि उनकी साहित्यिक उपलब्धियां हैं।

लेकिन हिंदी और खड़िया का अध्यापन और इन दोनों भाषाओं में साहित्यिक सृजन रोज दी की आधी-अधूरी पहचान है। झारखंड आंदोलन को जिन तीन बौद्धिक व्यक्तित्वों ने सांस्कृतिक आभा प्रदान की, उनमें डॉ. रामदयाल मुंडा, डॉ. विशेश्वर प्रसाद केसरी के साथ डॉ. रोज केरकेट्टा ही थीं, जिनसे मिलकर यह तिकड़ी पूर्ण हुई थी।

डॉ. सावित्री बड़ाईक के साथ अपने साक्षात्कार में रोज दी यह उल्लेखित करती हैं कि 'झारखंड आंदोलन से मेरे जुड़ने का उद्देश्य ही था कि महिलाएं भी समाज में बराबरी का स्थान पायें। सामाजिक, आर्थिक, नैतिक, प्रशासनिक बराबरी सिर्फ मौखिक नहीं नीतिगत और कानूनी हो।' *(आदिवासी देशज संवादः पृ 45-46)*

झारखंड आंदोलन की सफलता और अलग राज्य के गठन होने के बाद भी महिलाओं की, विशेष रूप से गरीब और ग्रामीण महिलाओं की स्थिति में कोई खास फर्क नहीं आया। तब रोज दी, प्रो. मालंच घोष (स्मृतिशेष त्रिदेव घोष की अर्धांगिनी) एवं स्मृतिशेष डॉ. कनक दीदी (बोधगया मठ से सैकड़ो एकड़ भूमि मुक्त कराने के छात्र युवा संघर्ष वाहिनी के सफल अभियान की नेत्री) के साथ जुड़कर आदिवासी महिलाओं के आर्थिक और भूमि पर अधिकार के सवाल, उनकी ट्रैफिकिंग एवं डायन-बिसाही के नाम पर शारीरिक मानसिक पड़ताड़ना के खिलाफ लगातार सक्रिय रहीं। इस तिकड़ी को भी दूरस्थ गांवों में भी जाने में कोई हिचक नहीं थी। मुझे याद है कि जब मैं 90 के दशक में 1992-93 में रांची से 30-35 किलोमीटर दूर अनगड़ा प्रखंड में पदस्थापित था तो इन तीनों दीदियों में से कोई ना कोई अक्सर वहां के किसी गांव में महिलाओं के साथ बैठकर बतियाते, समस्या का समाधान निकालते दिख जाती थीं।

डॉ. सावित्री बड़ाईक के साथ साक्षात्कार के क्रम में ही वे उल्लेखित करती हैं कि, 'स्वतंत्रता, स्वनिर्णय को जीवन में महत्व दिया जाना चाहिए। यह मेरा विश्वास है। विपरीत परिस्थितियों का हर हाल में निराकरण किया जाना चाहिए न कि उनके आगे समर्पण।' *(आदिवासी देशज संवाद, पृ : 38)*

फील्ड में सक्रियता के साथ-साथ उनकी कहानियों में भी महिलाओं की आजादी और उनके स्वनिर्णय का अधिकार जैसे सवाल बार-बार आते हैं। विशेष कर उनके पहले कहानी संग्रह 'पगहा जोरी जोरी रे घाटो' की सभी सोलह कहानियों में वे सचेतन रूप से अपनी स्त्री-दृष्टि के अनुरूप आदिवासी झारखंडी समाज में स्त्री-पुरुष समता के कथित मिथक को एक झटके में तोड़ती नजर आती हैं। कहानियाँ बिना शोर किये यह बतलाती हैं कि पितृसत्ता यहां भी है जो बेटियों-स्त्रियों का जमीन पर अधिकार नहीं स्वीकार करती। बेटों को बेटियों से ज्यादा तरजीह देती है। गैर-आदिवासी सामंती नजर उन्हें 'गोश्त' की तरफ परखती, और इस्तेमाल करना चाहती है आदि-आदि। विशिष्टता इन कहानियों की यह है कि यहां स्त्रियां- बेटियां प्रतिकार करती दिखती हैं, जबरदस्त प्रतिकार।

रोज दीदी के जीवन पर उनके शिक्षक और समाजसेवी पिता प्यारा केरकेट्टा का जबरदस्त प्रभाव रहा है। उन्होंने अपने पिता पर एक मोनोग्राफ भी लिखा है –'प्यारा मास्टर'।

पिता की जीवनी में रोज दी उल्लेखित करती हैं कि उनके दादा कैसे गांव के जमींदार की प्रताड़ना के लगातार शिकार हुआ करते थे, जिसने उनके पिता के मन में पढ़ाई पूरी करने की जिद पैदा की। सातवीं की परीक्षा में उत्तीर्ण होने के बाद तीन दिन पैदल चलकर अपने गांव से रांची पहुंचे थे। एक शिक्षक धीरेंद्र विश्वास के अनुग्रह से उनकी संत पॉल स्कूल में पढ़ाई शुरू हुई। 1925 की मैट्रिक परीक्षा में उसे विद्यालय से उत्तीर्ण होने वाले वे एकमात्र विद्यार्थी थे। संत कोलंबस कॉलेज, हजारीबाग से उन्होंने स्नातक की डिग्री ली। 1929 से शिक्षण का कार्य शुरु किया। 1942 में कोंडरा मिडिल स्कूल के प्रधानाध्यापक बने। लेकिन महात्मा गांधी, ठक्कर बापा और डॉ. राजेंद्र प्रसाद के संपर्क में आने के बाद 1947 में अध्यापन का कार्य छोड़कर आदिम जाति सेवा मंडल के सक्रिय सदस्य हो गए। और इस मंडल के सहयोग से उन्होंने अपने सिमडेगा अनुमंडल में प्राइमरी स्कूलों का जाल सा बिछा दिया। सिमडेगा- गुमला इलाके में उन्होंने 'आदिम जाति सेवा मंडल' के सहयोग से इतने विद्यालय खोले कि आज भी सरकारी प्रयास से उतने विद्यालय नहीं खोले जा सके हैं। केवल प्राइमरी विद्यालय ही नहीं मध्य विद्यालय, उच्च विद्यालय भी, बालिकाओं के लिए अलग विद्यालय, यहां तक की सिमडेगा कॉलेज के निर्माण में भी प्यारा मास्टर की महती भूमिका थी। 1995-98 की अवधि में अपने गुमला जिले में पदस्थापन के क्रम में पाँच दशक बाद भी प्यारा केरकेट्टा की इस कृति पताका को लोगों के मन में फहराते हुए महसूस किया था।

अपने साक्षात्कार और मोनोग्राफ में भी अपने पिता की साहित्यिक अभिरुचि की रोज दी बार-बार चर्चा करती हैं। उनके पिता के पास साहित्यिक पुस्तकों की एक छोटी सी लाइब्रेरी थी।

रोज दी के शब्दों में, 'उनके विद्यार्थी जीवन में दो बड़े ट्रंक में किताबें भरी हुई थीं। पर्ल ए. बक, टोल्सटॉय, गोर्की की रचनाएं उन्हें खास पसंद थीं। वे 'ए टेल ऑफ टू सिटीज' का उदाहरण देना नहीं भूलते थे। जबकि शेक्सपीयर का नाटक 'जूलियस सीजर' उन्हें कंठस्थ था। भारतीय ग्रंथों में विद्या भवन की पुस्तकें, चतुरसेन शास्त्री, रामवृक्ष बेनीपुरी, प्रेमचंद, शरतचन्द्र, रवींद्र नाथ, बंकिम चंद्र, जयशंकर प्रसाद, बनारसी दास चतुर्वेदी आदि की ग्रंथावलियां उन्होंने खरीद रखी थीं। नोबेल पुरस्कार प्राप्त सभी किताबें उनके संकलन में थीं।' *(प्यारा मास्टर, पृ, 18)*

उनके पिता केवल पाठक भर नहीं थे, बल्कि रोज दी के अनुसार, 'आधुनिक खड़िया साहित्य का आरंभ उनसे ही माना जाना चाहिए। उन्होंने खड़िया और हिंदी में लेख, नाटक, कहानी और कविताएं लिखीं। कहानी और कविताएं खड़िया भाषा में हैं। लेख और निबंध खड़िया और हिंदी दोनों में।' *(वही : पृ, 21)*

पिता की साहित्यिक अभिरुचि और उनके संग्रहित पुस्तकों के अध्ययन और मनन ने रोज दी के व्यक्तित्व - गढ़न में बड़ी भूमिका निभाई। डॉ. सावित्री बड़ाईक के साथ साक्षात्कार में वे स्वीकार करती हैं कि, 'उन्हें सोचने और देखने की दिशा हिंदी भाषियों और गैर - आदिवासी चिंतक, दार्शनिक, विद्वान, राजनीतिज्ञों और लेखकों से मिली। पिताजी, दीदी और छोटे भाई सहायक रहे। मुकदमों से चिंतित पिता 'हीट ऑफ टेंपरामेंट' की बातें करते थे। 'जूलियस सीजर' और 'सत्य हरिश्चंद्र नाटक' उनके हृदय से जुड़ा था। जूलियस सीजर का अंतिम वाक्य 'यू टू अन्योनियो' से अपने जीवन की तुलना करते थे। सत्य हरिश्चंद्र का माटी खाए जानवरा, महा महोच्छव होए जैसी मौत की कल्पना करते थे।' *(आदिवासी देशज संवादः पृ, 37)*

इसी साक्षात्कार के क्रम में वे उल्लेखित करती हैं कि, 'आदिवासी जीवन मूल्यों में सामूहिकता, सामुदायिकता, सहजीविता, सह अस्तित्व और समानता के सूत्र ही उनकी ताकत हैं जिसके कारण वे अस्तित्व में हैं। इन्हीं की बदौलत उन्होंने अपने क्षेत्र और अपनी सांस्कृतिक आर्थिक पहचान बना रखी है। इससे वे दूर नहीं हो रहे हैं बल्कि उन्हें दूर किया जा रहा है.... आदिवासी, जीवन बचाने के लिए गुलामी में चले जा रहे हैं। पर जिन्हें गुलामी भी नहीं मिल रही वे चोरी, लफन्नाई और बड़े अपराधियों के सेवक बन रहे हैं। जहां जोरदार प्रतिरोध कर रहे हैं वहां वे आतंकवादी कहे जा रहे हैं। आदिवासियों की मूल्य और सिद्धांत व्यक्तिवाद में बदल रहे हैं। इसके लिए नए सिरे से विमर्श की जरूरत है।' *(वही, पृ 46-47)*

वे यह भी रेखांकित करती हैं कि, 'जंगल, जमीन और जल की रक्षा के लिए पूरी दुनिया के आदिवासी संघर्ष कर रहे हैं। उन्हें यह संघर्ष करना पड़ रहा है, क्योंकि इन तीनों से ही वे विस्थापित किए जा रहे हैं। और विस्थापन ऐसा कि शरणार्थी का दर्जा भी नहीं पाते। वे जहां तहां इधर-उधर बिखरे जा रहे हैं। अपने संस्कृति को छोड़ देना उनकी मजबूरी बनती जा रही है।' (वही : पृ 39)

'आधी दुनिया' पत्रिका की पच्चीस से ज्यादा वर्षों तक संपादन का कार्य करने के अपने अनुभव को वे कुछ यूँ साझा करती हैं, 'आधी दुनिया' का संपादन कार्य मैंने अपने हाथ में लिया, तब से विविध विषयों पर अंकों को केंद्रित करने की चेष्टा की। पत्रिका वास्तव में महिलाओं में पढ़ने-लिखने की अभिरुचि जगाने की कोशिश है। ग्रामीण स्तर पर बहुत सी जानकारियां नहीं पहुंच पातीं। महिला उत्पीड़न, महिलाओं की सुरक्षा के लिए किये जा रहे प्रयास, कानून, महिलाओं की प्रतिक्रियाएँ इस पत्रिका में शामिल की जाती हैं। इसके अलावा स्वयं महिलाएं अपने प्रयासों को अभिव्यक्ति दें, यह भी हमारी कोशिश रहती है। नई जानकारी में स्वास्थ्य, कृषि, उद्यम, उद्योग, महिला एवं बाल अधिकार आदि विषय हैं। महिलाओं का ना लिखना एक वैश्विक समस्या है। इस कठिनाई से 'आधी दुनिया' भी ग्रस्त है।' *(वही, पृ 43)*

सत्तर के दशक से अभी हाल-फिलहाल ढाई बरस पूर्व तक रोज दीदी का निरन्तर लेखन, उनकी एक्टिविस्ट के रूप में सक्रियता, प्रतिकार, प्रतिरोध और प्रगतिशील चेतना से जुड़ी हर लड़ाई – हर आंदोलन के साथ खड़े होने का साहस, विश्वविद्यालय के अध्यापक होने के बावजूद भी सिमडेगा के अपने दूर गांव से उनका जुड़ाव, खड़िया समाज को आगे बढ़ाने की उनकी ललक आदि-आदि ऐसे ढेर सारे क्षेत्र हैं, जिनमें रोज दी की उपलब्धियों की चर्चा की जा सकती है और की जानी चाहिए। रोज दी से बातचीत करने या उनके व्याख्यान सुनने के क्रम में यह आश्चर्य होता था कि प्रतिकार और प्रतिरोध की आवाज इतनी शांत, इतनी मीठी भी हो सकती है। उनके चेहरे का भाव एक निष्काम योगिनी की तरह रहता था। कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी वे उद्वेलित नहीं होती थीं। बहुत शांत होकर उसका निराकरण करने का प्रयास करतीं। उनकी दोनों संतानों वन्दना दी और सोनल ने अपनी माँ का यही स्वभाव पाया है।

हमारे बीच अब रोज दी नहीं हैं, इस कटु सत्य को स्वीकार करना ही होगा। उनके कृतित्व और व्यक्तित्व दोनों ही हमारा मार्गदर्शन करते रहेंगे। स्मृति शेष रोज दी को हम सबों का अंतिम जोहार! ■

रोज दी जो स्थान रिक्त कर गयी, वह भरना मुश्किल

विनोद कुमार

झारखंड के सामाजिक और साहित्यिक क्षेत्र में रोज दी जो स्थान रिक्त कर गयी, उसे भरना असंभव भले न हो, लेकिन तत्काल बेहद मुश्किल लगता है। सामाजिक रूप से सक्रिय महिलाओं की आज कमी नहीं। अनेक महिलाएं पूरे समर्पण से इस दिशा में सक्रिय हैं। उसी तरह साहित्यिक क्षेत्र में अनेकानेक आदिवासी महिलाएं पिछले कुछ वर्षों में सामने आयी हैं, जिन्होंने एक ऊंचा मुकाम साहित्यिक जगत में हासिल किया है। लेकिन दोनों का समुच्च नहीं दिखता। सामाजिक सरोकार और मेधा का वह समिश्रण नहीं दिखता जो रोज दी के व्यक्तित्व में साकार होता दिखता था।

मैं यह दावा नहीं कर सकता कि मेरे उनसे घनिष्ठ संबंध थे। 2003 तक मैं बोकारो में रहता था और रोज दी के बारे में गाहे बगाहे सुना करता था। 2003 के बाद जब मैं रांची चला आया और यहां स्थाई रूप से रहने लगा तब रोज दी के बारे में जाना। मेरी दिवंगत बहन कनक से उनके घनिष्ठ रिश्ते थे और रांची की सामाजिक गतिविधियों में वे दोनों साथ रहते थे। 2008 में जब 'संवाद' की तरफ से 'देशज स्वर' पत्रिका निकलने लगी तो संपादन के लिए मुझे अक्सर 'संवाद' कार्यालय में बैठना पड़ता था और वहां अक्सर रोज दी से मुलाकात हुआ करती थी। और हमारे स्नेहिल संबंध बनते गये, जिसका आधार था एक दूसरे

के प्रति सम्मान। वह कब हमारी पारिवारिक मित्र जैसी हो गयी, इसका हमें पता ही नहीं चला। हमारे यहां के सभी पारिवारिक समारोहों में वे आती और हम भी कम ही सही, जब भी उनसे मिलते, आनंद का अनुभव करते।

उनके सामाजिक कार्यों में सक्रियता का कायल तो मैं था ही, धीरे-धीरे उनके लेखन से भी परिचित हुआ। हालांकि आदिवासियत और आदिवासी समाज के बारे में कुछ अतिरिक्त संवेदनशील होने की वजह से शुरुआत में मैं उनके प्रति थोड़ा शंकालु था। वे आदिवासी समाज में महिलाओं की स्थिति, स्त्री-पुरुष संबंध को जितनी बारीकी से देखती, उतनी बारीकी से मैं नहीं देख पाता। शायद आदिवासीयत के प्रति अपने अतिरिक्त मोह की वजह से। या फिर चूंकि मैं हिदू समाज से या कहिये गैर आदिवासी समाज से आदिवासी समाज में आया था, इसलिए सापेक्षिक दृष्टि से मुझे यह समाज बेहतर नजर आता, जबकि रोज दी उस समाज की हिस्सा थी और वहां की खामियों को देख पाती थीं। मसलन, उन्होंने अपनी कुछ कहानियों में युवा लड़के-लड़कियों के उच्छृंखल व्यवहार को अपने कहानी का विषय बनाया। वे पैतृक संपत्ति में आदिवासी महिलाओं को अधिकार दिये जाने की समर्थक थी, हालांकि यह धारा के विरुद्ध जाने जैसा था।

उन्होंने अपनी एक कहानी में आदिवासी स्त्री के मिजाज का बेहद अनोखा चित्रण किया है। हम सभी मानते हैं कि आदिवासी स्त्री और पुरुष के बीच के रिश्ते सहज हैं, और बराबरी के स्तर पर बनते हैं। वह सच्चे अर्थों में पुरुष की संगिनी है और घर में तो वह केंद्रीय भूमिका में रहती ही है, बाहर भी वह उसके साथ कंधे से कंधा मिला कर काम करती है। लेकिन वह अपने व्यक्तित्व का विर्सजन नहीं कर देती पुरुष के व्यक्तित्व में। एक कहानी में पति पत्नी काम करने के लिए बाहर जाते हैं। वहां औरत उत्पीड़न की शिकार होती है। वहां से लौटने पर जब उसकी सहेलियां कहती हैं कि तुमने इतना कुछ अत्याचार सहा, फांसी लगा कर मर क्यों नहीं गयी, तो वह फुफकार कर कहती है कि वह क्यों मरे, उसका पुरुष, यानी उसका पति, के लिए? और अत्याचार तो उन लोगों ने किया, मेरा अपराध क्या?

मेरे उपन्यास 'रेड जोन' के फ्लैप पर लिखने के लिए उन्होंने उपन्यास के जिस संदर्भ को चुना, वह स्त्री और प्रेम संबंधी उनकी इसी धारणा को और पुष्ट करता है। वे कहती हैं – ''यह उपन्यास फूलमणि के माध्यम से पूरे पुरुष समाज को चुनौती देता है। फूलमणि कायर प्रेमी के द्वारा गर्भवती होती है। किनी चटर्जी फूलमणि से उस पुरुष का नाम पूछते हैं जो इस कृत्य में सहभागी रहा। समतामूलक समाज के लिए संघर्ष करने वाले किनी वास्तव में शेक्सपीयरकालीन स्त्री सोच से मुक्त नहीं हैं। वे फूलमणि की तुलना जूठे कुल्हड़ से कर बैठते हैं। वे समझ नहीं पाते कि फूलमणि ने प्रेम किया है, प्यास लगने पर ग्लास से पानी नहीं पिया है।''

उनकी कहानियों व लेखों को पढ़ कर यह एहसास तीव्रता से होता है कि पिछले कुछ दशकों में कविता के क्षेत्र में तो अनेक प्रतिभाएं सामने आयी हैं, लेकिन गद्य लेखन के क्षेत्र में वे संभवतः अकेली हैं। उनकी कहानियां, उनके लेख, उनके संपादन की क्षमता सभी अपना महत्व रखती हैं और अनायास यह ख्याल आता है कि लेखन और साहित्य के क्षेत्र में वे जिस सम्मान की हकदार थीं, वह उन्हें नहीं मिला। वजह यह कि अभी भी हिंदी समालोचना के क्षेत्र में ऐसे लोगों का प्रभाव है जो आदिवासी साहित्य को सदाशयता की दृष्टि से तो देखते हैं, लेकिन उसे अपने मध्यमवर्गीय हिंदी सौंदर्यशास्त्र की कसौटियों पर ही कसते हैं। और जो उन कसौटियों पर खरा उतरे, उन्हें ही वह सराह पाते हैं। रोज केरकेट्टा तो उनके सौंदर्य के मापदंड और मध्यमवर्गीय जीवन मूल्यों को चुनौती देती हैं।

जरूरत इस बात की है कि उनके संपूर्ण लेखन को नये सिरे से पढ़ा जाये और समग्रता से उस पर विचार हो। इसलिए सबसे पहला काम तो उनके कथा साहित्य, कविताएं और समसामयिक विषयों पर लिखे उनके आलेखों को इकट्ठा किया जाये ताकि उनका मूल्यांकन हम कर पायें। वह उस संक्रमण काल का लेखन है जिसमें आदिवासी जीवन और उसके जीवन मूल्यों में आप सूक्ष्म बदलाव होता परिलक्षित कर पायेंगे।

हम रोज दी को स्नेहपूर्वक एक बार फिर याद करते हैं। ■

धरती मेरा शरीर : रोज केरकेट्टा और विश्व आदिवासी कविता

रविभूषण

जो वर्ल्ड ट्राइबल पोएट्री, यानी 'विश्व-आदिवासी कविता' है, उसमें दुनिया भर के लगभग 50 सशक्त आदिवासी कवि हैं। इनमें से कुछ की कविताएं मैंने अंग्रेज़ी में पढ़ी हैं और कुछ का अनुवाद भी किया है।

विश्व के आदिवासी भाषा में – क्या कोई आदिवासी कवि या अन्य कवि है, जिसने जंगल को अपना घर, नदी को अपनी मां, और धरती को अपना शरीर कहा है? ऐसा कहने वाली पहली कवयित्री रोज केरकेट्टा हैं। वह अपनी कहानियों को लेकर चर्चित हैं। रोज दी एक्टिविस्ट थीं, यह हम सब जानते हैं। 1991 में रांची आने के बाद दिनेश्वर प्रसाद से मेरी भेंट हुई। उनसे मैंने झारखंड के आदिवासी भाषाओं और लेखकों के बारे में जानना चाहा। उन्होंने रोज केरकेट्टा जी का नाम लिया और कहा कि इन्होंने मेरे अधीन पीएच.डी. की है। उनके शोध का विषय था – 'खड़िया लोककथाओं का साहित्यिक-सांस्कृतिक महत्व।' परंतु जिस चीज़ की ओर मैं आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूं, जानना चाहता हूं, वह यह कि कौन सा कवि है – आदिवासी या ग़ैर-आदिवासी – तो बताइए, जिसने जंगल को अपना घर, नदी को अपनी मां, और धरती को अपना शरीर माना है? एक नाम मेरे जेहन में बार-बार आता है – रोज केरकेट्टा! रोज केरकेट्टा, रोज केरकेट्टा। यह तीन पंक्तियाँ साधारण पंक्तियाँ नहीं हैं। उसे ऐसे पढ़ने से आपको एक स्टेटमेंट लगेगा कि – 'जंगल मेरा घर है, नदी मेरी मां है, और धरती मेरा शरीर है।'

इन तीन पंक्तियों पर मैं कम से कम डेढ़ घंटा बात कर सकता हूं, किंतु मैं 5–10 मिनट में इन पंक्तियों का महत्व बताना चाहता हूं। डिक्शनरी में हर शब्द का एक निश्चित, सीमित अर्थ होता है। लेकिन बड़ा कवि वही होता है जो अपनी कविता के शब्दों को डिक्शनरी के वर्ड मीनिंग तक ही सीमित नहीं रखता। वही किसी भी विमर्श के लिए बड़ा कवि बनता है। अब जब हम देखते हैं कि दुनिया की किसी भी भाषा की

डिक्शनरी में नदी का अर्थ 'मां' नहीं है। जंगल का अर्थ दुनिया की किसी भी भाषा के शब्दकोश में 'घर' नहीं मिलेगा। धरती का अर्थ विश्व की किसी भी भाषा के शब्दकोश में 'शरीर' नहीं मिलेगा। लेकिन बड़ा कवि ऐसा ही होता है। डिक्शनरी में जो मीनिंग फिक्स होते हैं, उन्हें वहां से निकालकर जो कवि नये अर्थ की सृष्टि करता है, वही बड़ा कवि है। इन तीन पंक्तियों को लेकर मैं लगातार तीन-चार दिनों से परेशान हूं। मैं कम से कम सौ से अधिक बार सोच चुका हूं और उसके बाद इस निर्णय पर पहुंचा हूं कि ये पंक्तियाँ विश्व - आदिवासी कविता की महानतम पंक्तियों में से हैं।

21वीं शताब्दी में, एक कवि के रूप में रोज केरकेट्टा का वह मूल्यांकन अभी तक नहीं हुआ है, जितना कथाकार के रूप में, कहानीकार के रूप में किया जाना चाहिए। उनके दो कहानी संग्रह हैं – एक 'पगहा जोरी जोरी रे घाटो' और दूसरा 'बिरुवार गमछा तथा अन्य कहानियां। तीसरा 'प्रतिनिधि कहानी' का प्रकाशन जो संभवतः अश्विनी पंकज ने किया है।

'जंगल को घर कहना' – जंगल के पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, जानवर – इन सभी को एक परिवार के रूप में देखना है। शब्द के जो मीनिंग फिक्स होते हैं, वह उनका विस्तार करती हैं और यह उनके जीवन में है, व्यक्तित्व में है। अगर ऐसा न होता, तो उन्हें सैकड़ों-हज़ारों लोग 'रोज दी' कहकर नहीं पुकारते। यह परिवार का विस्तार है जिसमें जो जैविक दृष्टि से आपकी बहन नहीं है, उसे भी आप बहन मानते हैं।

वह पूरे परिवार को विस्तार देती हैं। 'जंगल मेरा घर था' – अब आप इसका सौंदर्य देखिए, महत्व देखिए कि पूरी दुनिया का जंगल उनके नज़रों में है। आज दुनिया में जंगल नष्ट हो रहे हैं, जंगलों में आग लग रही है। झारखंड में पहले कितना प्रतिशत जंगल था और आज कितना प्रतिशत जंगल है – या पूरे देश में कितना है, यह अलग प्रश्न है। 'जंगल मेरा घर था' – वह घर है भी, नहीं भी है। आज घर का अर्थ ग़ायब हो चुका है। 'नदी मेरी मां है' – भारत में केवल एक ही नदी को मां कहा गया है – वह है गंगा। गंगा को छोड़कर स्थानीय स्तर पर कुछ नदियां होंगी, जिन्हें मां कहा जाता है, पर राष्ट्रीय स्तर पर किसी को मां नहीं कहा गया है।

'नदी मेरी मां है' – उन्होंने किसी नदी का नाम नहीं लिया। 'पहाड़ मेरा घर है' – इसमें किसी पहाड़ का नाम नहीं लिया गया। अर्थात इसमें यह अर्थ छुपा हुआ है कि पूरी दुनिया के जो पहाड़ हैं, जंगल हैं, वह मेरा घर है; पूरी दुनिया की जो नदियाँ हैं, वह मेरी मां है; और ये जो धरती है, वह मेरा शरीर है। यह वर्ल्ड ट्राइबल पोएट्री की सबसे प्रबुद्ध लाइन है, उसे इसमें आना चाहिए। मेरे नज़र में कोई भी ऐसा कवि नहीं है जो एक साथ तीनों को जोड़ता है – घर, नदी और शरीर का संबंध। यह शरीर का विस्तार है, परिवार का विस्तार है। यह बात अगर मेरे जेहन में पहले आती, तो मैं रोज दी से मिलता और कहता –'रोज दी, यह आपने क्या कह दिया है!'

इन तीन पंक्तियों के आधार पर रोज केरकेट्टा विश्व स्तर पर स्थापित हो चुकी हैं।

(30 अप्रैल 2025 को रांची में आयोजित श्रद्धांजलि सभा में रविभूषण जी के वक्तव्य को आलेख के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। – संपादक मंडल)

इञाः गमगम जेः तिंजाः ते... – माँ की अंतिम सीख

वंदना टेटे

माँ को और आप सबों को जोहार! मैं आने से मना कर रही थी क्योंकि कई रिचुवल अभी होने बाकी हैं। माँ हरेक घर की धुरी होती है और उसके इर्द-गिर्द हम सभी बच्चे होते हैं। माँ का जाना कितना दुःखदायी होता है यह आप सभी जानते हैं। 2019 के बाद ऐसी स्थिति हो गयी थी कि हम लोग केवल उनके चारों ओर घूमते थे।

हम लोगों का एक रिवाज है - लोगोंय डिःभरना अर्थात छाया भीतराना (छाया को घुसाना)।

हम यह मानते हैं कि वह हमारे साथ है, लेकिन आप जब किसी को आवाज दें और उधर से कोई जवाब नहीं आये तो जंगल में खो जाने जैसा लगता है। आप लोग जो अभी यहाँ जमा हुए हैं, आपके हरेक के पास उनसे जुड़ी स्मृतियाँ हैं, यादें हैं। बेटी होने के नाते हमारा जो संबंध था और एक साथी होने के नाते आपका जो संबंध था, उनके सान्निध्य का प्यार जो आप सभी को मिला, उससे मैं वंचित रही हूँ – ज्यादा नहीं, थोड़ा ही।

सामाजिक जीवन में जब से प्रवेश किया या यूँ कहें कि सामाजिक जीवन में लाने का श्रेय भी उनको ही है। अंगुली पकड़कर उन्होंने सिखाया। बाद के समय में वह कहती थीं कि तुम्हारे अंदर जो विचार-संस्कार डाले हैं, उन विचारों को आप कैसे लेते हो, आत्मसात करते हो।

सामाजिक जीवन में जहाँ तक मुझे याद है, 1985–86 होगा। माँ रांची यूनिवर्सिटी के वीमेन वर्किंग हॉस्टल की वार्डन बनाई गई थीं। पूर्व वार्डन को यह अच्छा नहीं लगा।

उस समय मैं इंटरमीडिएट में पढ़ती थी। हम लोग जब वहाँ हॉस्टल में रहने गये, वहाँ पहले से कई तरह की चीजें होती थीं। पहले माँ जहाँ-जहाँ जाती थीं, हम वहाँ-वहाँ जाते थे। आठवीं क्लास के बाद हम हॉस्टल गये। मैट्रिक लिखने के बाद फिर से माँ के पास आ गये।

माँ के रांची आने के बाद सामाजिक जीवन का जो संघर्ष था, झारखंड आंदोलन का जो जीवन था, उसको बहुत करीब से देखने का मौका मिला। घर में बैठकें होती थीं, लोग आते थे – केवल आदिवासी नहीं, बल्कि अन्य समुदायों के लोग भी। मीटिंग में जो बातें होती थीं उन्हें सुनते थे। तब एक समझ बनी थी कि झारखंड अलग राज्य क्यों होना चाहिए? महिलाएँ आती थीं तो सबको दीदी बोलते थे। केवल कल्याणी आंटी को आंटी बोलते थे, परंतु काम के दौरान वह भी कब आंटी से दीदी बन गईं पता नहीं चला।

झारखंड आंदोलन की चर्चा जब होती थी – महिला भागीदारी कैसे हो? महिला मुद्दा क्या हो? इसका स्वरूप क्या हो? इन सब चीजों पर जब चर्चा होती थी तो पहले समझ में नहीं आता था। खासकर स्कूली जीवन में गैर-बराबरी, अत्याचार को नहीं समझ पाते थे। स्कूल के बाद जब कॉलेज में आये तब हमें धीरे-धीरे समझ में आने लगा कि आदिवासी–गैर-आदिवासी में फर्क, महिला–पुरुष में फर्क। धीरे-धीरे समझदारी बढ़ने लगी।

हॉस्टल की जो मैं बात कर रही थी, वह ऐसा था कि हॉस्टल के पीछे तरफ गाँजे का एक पौधा था – वह अपने-आप पनपा था या किसी ने लगाया था, नहीं मालूम। माँ के विरोधियों ने पुलिस में कंप्लेन किया और हल्ला कर दिया कि रोज केरकेट्टा ने हॉस्टल में गाँजे का पौधा लगाया है। काफी हल्ला-गुल्ला हुआ। पेपरबाज़ी हुई। गार्ड भी पूर्व वार्डन के साथ था। हल्ला-गुल्ला सुनने की आदत नहीं थी। गाली-गलौज सुनने की भी आदत नहीं थी, पर जब आपके चारों ओर उस तरह का माहौल हो तो आप कल्पना कर सकते हैं कि हमारी स्थिति क्या होती होगी? उस समय माँ ने धैर्य के साथ जो रणनीति बनाई – हम लोग उतावले हो जाते थे, घबरा जाते थे कि यहाँ से चलो। पर माँ घबराई नहीं। धैर्यपूर्वक उसका डटकर सामना किया और हमें कहती रही कि इस तरह की घटनाएँ जीवन में होंगी – इससे कैसे निकला जाए, कैसे निबटा जाए, यह सब सीखना होगा। खुद तय करना होगा कि हमारा रास्ता क्या हो।

यह सब चीजें जीवन में आती रहीं। माँ उन्हें निबटाती रहीं। जब तक वह रहीं, हर छोटी-बड़ी चीजों को हम सबों से साझा करती रहीं। पर उनके मन में जो दर्द छिपा था, वह कम साझा करती थीं। जब पीड़ा हद से ज्यादा बढ़ जाती थी तब वह साझा करती थीं।

वह कहती थीं कि जीवन इतना आसान नहीं है। इसे आसान बनाना या कठिन बनाना हमारे हाथ में है। वह हमेशा जड़ को पकड़कर रखने की बात कहती थीं। नाना भी कहते थे कि जड़ को मत छोड़ो। माँ भी यही कहती थीं – जड़ों को मत भूलो। जिस दिन जड़ से उखड़ जाओगे, उस दिन खत्म हो जाओगे। बाद में मुझे समझ में आया कि आदिवासीपन क्या है? आदिवासियत क्या है? आदिवासीपन से बाहर आने पर जो समस्याएँ आएँगी, उनका सामना कैसे करेंगे?

मैं राजस्थान से लौटकर सामाजिक कार्य में लगी तो उन्होंने कहा – तुम जेपीएससी में क्यों नहीं बैठती हो? उनकी इच्छा के कारण, न चाहते हुए भी – क्योंकि स्वतंत्र काम करने की आदत बन चुकी थी – मैंने जेपीएससी की परीक्षा दी। उसका रिजल्ट ही नहीं आया तो मैं काफी खुश हुई। बाद में माँ ने भी इसे स्वीकारा कि किसी पर अपनी चीजों को थोपना अच्छी बात नहीं है।

नाना जी भी चाहते थे कि घर में कोई अफसर हो तो चीजें आसान हो जाती हैं। मेरे मामा जो बहुत अच्छे वायलिन वादक थे, पेंटर थे – अपने बाबा के कहने पर अधिकारी तो बन गये, पर उनका कलाकार मन काफी आहत हुआ। माँ को इन चीजों ने काफी प्रभावित किया। मामा जब गुज़र गये तब उन्हें यह अहसास हुआ। वह हमें कहने लगीं – तुम्हें जो रास्ता चुनना है, चुनो, पर मज़बूती के साथ चुनो।

खड़िया में वह कहती थीं – इञाः गमगम जेः तिंजाः ते, तोले उम लाः को उमिंग आवना, मेरे बेहर ते जुंडेम (मेरी बातों को मोरा में बाँधो, नहीं तो मेरे नहीं रहने पर किससे पूछोगी?)

(30 अप्रैल 2025 को रांची में आयोजित श्रद्धांजलि सभा में वंदना टेटे के वक्तव्य को आलेख के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। – संपादक मंडल)

रोज दी : जो संवाद रचती रहीं...

घनश्याम

रोज दी के बारे में क्या बोलूं, कुछ समझ नहीं आ रहा है।

आज जब मैं सुबह 'संवाद' की लाइब्रेरी देख रहा था, तो मुझे एक पुस्तिका मिली – 'पगहा जोरी-जोरी रे घाटो' की समीक्षा पुस्तक। रणेन्द्र जी लिखते हैं – जो सौन्दर्य झूमर और जदुरा गीतों में, सोहराय और कोहबर की भित्ति चित्रों में, पइका और छऊ नृत्य में, करमा और सरहुल में सरोबार है, ठीक-ठीक वही सौंदर्य इन कहानियों में भी छलक रहा है। हरे और लाल रंग के सौंदर्य का विवरण कथाकार आषाढ़ की पहली बरसात के बाद की हरी-हरी दूब और उनके बीच मखमल की तरह मुलायम पटबीजना कीड़ों के साथ विस्तार से करती है। ये मौलिक बिंब कहानी को अनोखा आस्वाद देते हैं।

रविभूषण सर कहते हैं कि रोज केरकेट्टा कहानी लिखती नहीं हैं, कहानी कहती हैं। वे आगे कहते हैं – आधी दुनिया और आधी आबादी को स्वर देने वाली रोज केरकेट्टा एक प्रमुख कथाकार हैं। उनकी चिंता में समूची दुनिया है, किस्सागोई है।

कहानी कहने का एक नायाब तरीका है, जो हमें प्रेमचंद से और यहीं के एक कथाकार राधाकृष्ण को अगर हम याद करें तो उनसे जोड़ता है। हिन्दी में जनजातीय पात्रों को लेकर जो कहानियाँ लिखी गई हैं, यह कहानियाँ उनसे भिन्न हैं।

इस समीक्षा में जितने लोगों ने लिखा है, उसे पढ़कर मैं यह कह सकता हूँ – वास्तव में, रोज दी पहले एक्टिविस्ट हैं, बाद में कहानीकार हैं, और वह एक्टिविस्ट की जो पहली शर्त है, उससे जुड़ी हैं।

रोज दी हमेशा जमीन से जुड़ी रहीं।

झारखंड बनने के बाद जब अशोक सिन्हा के यहाँ बैठे थे, फ़ैसल अनुराग भी था। उस बैठक में रोज दी ने कहा – जो राज बना है, वह हमारे आकांक्षाओं के अनुरूप नहीं बना है, बल्कि ग्लोबल इकोनॉमी की आकांक्षाओं के अनुरूप बना है।

उन्होंने आगे कहा कि अभी जो स्थिति है, आने वाला समय उससे भी भयानक होगा।

उस समय हमने उनकी बातों को उतना समझ नहीं पाए थे। लेकिन इतना जरूर समझे थे कि वह जिस तरफ संकेत कर रही थीं, उसका मतलब है कि स्टेट जो है, वह क्रूर रूप में सामने आएगा।

और आप सबों को यह जरूर पता होगा कि 2 फरवरी को तपकरा में गोली चली और आठ लोग मारे गए।

उसके बाद जो स्टेट का नंगा नाच हुआ, सीधे-सादे लोगों पर केस हुए – इसका मतलब, रोज दी भविष्य में क्या हो सकता है, जानती थीं। स्टेट का करैक्टर क्या हो सकता है – इसके बारे में वह एक स्पष्ट नज़र रखती थीं। इसलिए मैं रोज दी को हमेशा एक एक्टिविस्ट मानता हूँ – महिला एक्टिविस्ट भर नहीं, बल्कि मानवता से लबरेज़ एक्टिविस्ट।

राज्य बनने के चार महीने बाद 'संवाद' बना और 'संवाद' नाम रोज दी ने रखा। पहली बैठक जो हुई थी, जिसमें फ़ैसल थे, रोजालिया थीं, श्रावणी थीं, दयामनी थीं, शेखर, कोर्दूला और रोज दी थीं। रोज दी ने कहा कि 'संवाद' बनाने के पीछे का कारण यह है कि आज समाज में संवादहीनता बढ़ गई है। इस संवादहीनता को तोड़ने के लिए 'संवाद' बना। आने वाले दिनों में जो राज्य बना है, यदि इसे समृद्ध करना चाहते हैं, लोकतांत्रिक बनाना चाहते हैं, तो निश्चित तौर पर आपस में संवाद होना जरूरी है। मैं रोज दी को (यह ठीक है, जो व्यक्ति आया है, वह एक दिन जाएगा) हमेशा अभी भी अपने इर्द-गिर्द पाता हूँ, और मुझे लगता है – रोज दी न होते हुए भी, अपने विचारों से, अपनी मुस्कुराहट से हम जैसे लोगों को उत्प्रेरित करती रहेंगी, आगे बढ़ने का रास्ता दिखाएँगी।

(30 अप्रैल 2025 को रांची में आयोजित श्रद्धांजलि सभा में घनश्याम जी के वक्तव्य को आलेख के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। – संपादक मंडल)

श्रद्धांजलि सभा

रोज दी : स्मृति, संघर्ष और संकल्प की विरासत

30 अप्रैल 2025 की संध्या एक भावुक क्षण लेकर आई, जब झारखंड की जानी-मानी आदिवासी लेखिका, कवयित्री, शिक्षिका और सामाजिक कार्यकर्ता रोज केरकेट्टा को उनकी संघर्षशील स्मृतियों और प्रेरक योगदानों के साथ ससम्मान याद किया गया। राँची स्थित एस.डी.सी. सभागार में 'संवाद' द्वारा आयोजित श्रद्धांजलि सभा में उनके सहयात्री, लेखक, पाठक, प्रशंसक और परिजन बड़ी संख्या में उपस्थित थे। सभी ने बारी-बारी से अपने संस्मरण साझा किए।

शशि बारला - मैं रोज दी से पहली बार 'संवाद' कार्यालय में मिली। हम सबों ने उनसे बहुत कुछ सीखा, खासकर लिखना। वह हमें हमेशा आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करती थीं। उनके पास ज्ञान का एक अथाह भंडार था, इसीलिए लोग उन्हें 'चलती-फिरती किताब' कहा करते थे।

गोविन्द शर्मा - उनकी मुस्कुराहट मेरे जेहन में अंकित है। मैं उनसे एक बार मिला और उन्हें आश्वस्त करके आया कि मैं उनसे मिलता रहूंगा, पर मिल नहीं पाया। उन्हें बहुत-बहुत श्रद्धांजलि।

फातिमी - आज बहुत अफसोस का दिन है। रोज दी हमारे बीच नहीं रही। उनके आदर्श रह गये हैं। उनके बताये राह पर चलना ही उनकी प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

अजिता - रोज दी मेरे लिए एक परिवार की सदस्य थी। वे कई मोर्चे पर सक्रिय थी। वे एक्टिविस्ट थी, लेखक, टीचर थी, लोगों को प्रेरणा देने वाली थी। मेरे साथ उनका अनुभव प्यार देने वाली पारिवारिक सदस्य की तरह था। उनका जाना हम सबों के लिए बड़ी क्षति है।

अनिता गाड़ी – मैं उनको रोज दी जरूर बोलती थी, लेकिन मेरे लिए वह मां समान थीं। एक महिला होकर जिस तरह परिवार को साथ लेकर बच्चों को आगे बढ़ाया, उसी तरह समाज में भी अन्य लोगों को आगे बढ़ाने का काम किया। उनसे हमें काफी प्रेरणा मिलती रही।

प्रवीर पीटर - रोज दी जिस तरह जेंडर पर प्रशिक्षण देतीं थीं, वह बेहद रोचक होता था। आदिवासी महिलाओं के अधिकारों को लेकर उनकी सोच बहुत स्पष्ट थी। संपत्ति के अधिकार जैसे मुद्दों पर वे अपने समुदाय से सवाल भी करती थीं।

रोजालिया तिर्की - जिस दिन रोज मौसी का देहांत हुआ, मैं सिमडेगा जा रही थी, अंतिम दर्शन नहीं कर पाई, इसका खेद है। आज जो मैं सामाजिक कार्यकर्ता हूं, उसमें उनका बड़ा योगदान है। उनके घर रहकर पढ़ी, उनसे बहुत कुछ सीखा।

रणेन्द्र - एक व्यक्ति कई मोर्चे पर सक्रिय थीं। जमीनी लड़ाई लड़ने वाली एक्टिविस्ट, कहानीकार, कथाकार, कवयित्री, शिक्षिका और 'आधी दुनिया' की संपादक, महिला आंदोलन की नेत्री। किसी भी व्यक्ति का व्यक्तित्व इतना विस्तार कर पाना सामान्य लोगों के लिए कठिन है।

किरण - रोज दी को लेकर सबके पास मधुर स्मृतियां हैं। वह ऐसा व्यक्तित्व थीं जिनके प्रेम में हर कोई भींग सकता था। उनका व्यक्तित्व बहुत मृदुल था, कोमल था। वह बहुमुखी प्रतिभा की हकदार थीं। वह सबों को प्रेरित करती थीं कि आगे बढ़ने के लिए संघर्ष जरूरी है और अन्याय का विरोध कहीं भी, किसी से भी, निडर होकर करना चाहिए।

कल्याणी मीणा - रोज दी के व्यक्तित्व में एक खास तेज था। वे बाहर से जितनी शांत और मधुरभाषी थीं, भीतर से उतनी ही दृढ़, संघर्षशील और जुझारू थीं।

विनोद कुमार - रोज दी की कहानियां प्रतिरोध की कहानियां हैं। वे बहुत सहजता से सामाजिक विषयों पर लिखती रहीं। अपने समाज की विसंगतियों को उठाती रहीं। यह दुर्भाग्य है कि उन्हें वह सम्मान नहीं मिल पाया, जिसकी वे वास्तव में हक़दार थीं।

पुष्पा टेटे - रोज दी हमेशा कहा करती थीं कि महिलाओं को केवल परिश्रम का ही फल मिलता है, पहचान का कोई शॉर्टकट नहीं होता। पहचान से आप आगे नहीं बढ़ सकते, जब तक कि आप निरंतर परिश्रम न करें।

कोर्दूला कुजूर - रोज दी हमारे लिए एक शिक्षिका थीं, एक अगुवा थीं और एक मां जैसी स्नेहिल मार्गदर्शिका भी। वह हमेशा हमें आगे बढ़ने की प्रेरणा देती थीं। उनके मानवतावादी विचार उनकी कार्यशैली, शिक्षण और लेखन सभी में स्पष्ट झलकते हैं। वह हमेशा उत्पीड़ितों के साथ खड़ी रहीं।

शांति सवैंया - आज हम एक ऐसी महिला शख्सियत को याद कर रहे हैं, जो आजीवन महिलाओं के पक्ष में खड़ी रहीं। वे हमेशा हमें आने वाली चुनौतियों के प्रति सजग करती थीं, वह कहती थीं कि इन सबसे जूझना ही पड़ेगा। उन्होंने अपने शरीर की कमजोरी को कभी मन की कमजोरी नहीं बनने दिया, यही उनकी सबसे बड़ी ताकत थी।

कुमुद - रोज दी हमारी संघर्ष की साथी थीं। उनके व्यक्तित्व में झारखंड की समृद्ध संस्कृति समायी हुई थी – शांत, मृदुभाषी, धैर्यशील, लेकिन भीतर विद्रोह की अग्नि जलती थी। वे केवल एक आदिवासी महिला नहीं थीं, बल्कि स्त्री-पुरुष की सीमाओं से परे एक ऐसा व्यक्तित्व थीं, जिन्होंने अपने परिश्रम और संकल्प के बल पर अपनी पहचान गढ़ी।

सावित्री बड़ाइक - रोज फूफू को श्रद्धांजलि! वह हमेशा मेरे साथ है, जैसे मैं मानती हूं। मेरे मां बाबा मेरे साथ हैं, वैसे फूफू भी मेरे साथ है। उनकी छत्रछाया महसूस करती हूं। इन दिनों मैं उनको ही पढ़ रही हूं। उनपर एक किताब लिखना है, इसलिए उनकी कहानियां, कवितायें को फिर से दुबारा पढ़ रही हूं।

जसिंता केरकेट्टा - आज भी जब मैं रोज मां को याद करती हूं, तो उनके कमजोर और बीमार शरीर की छवि नहीं उभरती, बल्कि मेरे भीतर एक हरे-भरे महुआ के पेड़ की तरह वे मौजूद हैं, जिसकी जड़ें गहरी और मजबूत हैं, जिसकी डालियां फैलकर लोगों को छाया देती हैं। उस विशाल वृक्ष को देखकर जैसी उम्मीद और ताकत मिलती है, वही शक्ति आज भी मेरे भीतर रोज मां के रूप में बनी हुई है।

हेमंत - पहले वे हमारे लिए 'रोज जी' थीं, फिर धीरे-धीरे 'रोज दी' बन गईं। वे हमारे सामने बहुत कम बोलती थीं, बस सुनती रहतीं, और फिर चुपचाप बिना कुछ कहे उठकर चली जातीं। लेकिन हमें अहसास होता कि वे हमें अपने सहज स्नेह की परिधि में धीरे-धीरे समेट रही हैं। धीरे-धीरे हम भी उनके स्नेह के परिधि में आ गये फिर रोज जी रोज दी बन गईं।

वंदना टेटे - मां हमेशा कहती थीं कि जड़ों को मत भूलना। जिस दिन तुम जड़ों से उखड़ जाओगे, उसी दिन तुम्हारा अंत शुरू हो जाएगा। वह अक्सर कहती थीं, तुम्हें जो भी रास्ता चुनना हो, बेहिचक चुनो, लेकिन उसे पूरी मजबूती और जिम्मेदारी के साथ चुनो।

एनी टुडू - रोज दी लैंगिक समानता पर प्रशिक्षण देती थीं और लड़कियों को हिम्मत और आत्मविश्वास से भर देती थीं। उनका प्रशिक्षण देने का तरीका बेहद प्रभावी और सहज था।

घनश्याम - रोज दी पहले एक एक्टिविस्ट हैं, बाद में कहानीकार है, कथाकार है। एक्टिविज़्म की पहली शर्त है, ज़मीन से जुड़ाव और रोज दी हमेशा ज़मीन से जुड़ी रहीं। रोज दी दूरदर्शी थीं। मैं रोज दी को हमेशा एक एक्टिविस्ट मानता हूं, सिर्फ महिला एक्टिविस्ट नहीं, बल्कि मानवता से लबरेज एक्टिविस्ट।

रविभूषण - विश्व की किसी भी भाषा में, रोज केरकेट्टा संभवतः पहली ऐसी कवयित्री हैं, जिन्होंने जंगल को अपना घर, नदी को अपनी मां और धरती को अपना शरीर कहा। शब्द का जो मीनिंग फिक्स है, वह उसका संवेदनशील विस्तार करती हैं और यही विस्तार उनके व्यक्तित्व में भी झलकता है। अगर यह संवेदना और गहराई उनमें न होती, तो आज सैकड़ों-हजारों लोग उन्हें 'रोज दी' कहकर इतने स्नेह और सम्मान से न पुकारते।

इनके अलावा अन्य वक्ताओं ने भी अपनी भावनाएं और स्मृतियां साझा कीं। कार्यक्रम के अंत में, रोज दी के सम्मान में दो मिनट का मौन रखकर उन्हें श्रद्धांजलि दी गई और इसके साथ ही कार्यक्रम का विधिवत समापन हुआ। कार्यक्रम का संचालन श्रावणी ने किया।

प्रस्तुति – **वीणा वर्मा**

मर्दुमशुमारी

दाखिल हुए दो मर्द आंगन में
पूछा, कोई है घर में,
मां ने भेजा, मैं निकला
पूछा-किसे ढूंढ़ रहे हैं आप? '
अजनबी बोला - 'भेजो पिता को'
घर के बारे पूछना है
मर्दुमशुमारी वाले हैं
'पिता बाहर काम पर जाते
मां घर में रहती हैं।'
'मां क्या करती? पूछा उसने
'मैं शर्मिन्दा कुरेच कर जमीं
बोला वह तो हाऊस वाइफ है
कुछ नहीं घर में रहतीं
रसोई पोंछा यही भर करती
अजनबी ने लिखा रजिस्टर पर
पुरुष - नौकरी
स्त्री - हाऊसवाइफ। ■

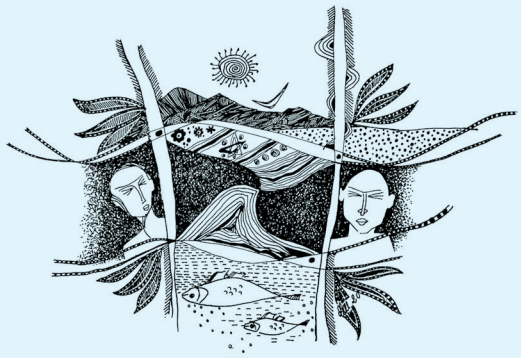

नगड़ी को

नगड़ी को चाहिए रोटी कपड़ा
नगड़ी को चाहिए खेत खलिहान
नगड़ी को चाहिए न्याय

नगड़ी को चाहिए खुली हवा
नगड़ी को चाहिए बहता पानी
नगड़ी को चाहिए आजादी

नगड़ी में चाहिए काम हाथों को
नगड़ी में चाहिए काम का फल
नगड़ी को चाहिए खेत-खलिहान

नगड़ी को चाहिए पर्चा पट्टा
नगड़ी को चाहिए दखल बेरोक
नगड़ी को चाहिए सच्चा न्याय

नहीं पसंद बनाया जाना
अर्दली, चपरासी और पियुन
नगड़ी को चाहिए पर्चा पट्टा

किसान बनकर उगाना चाहता
फल, फूल और तरकारी
जिसे खाकर तन मन भरे
हंसे, जग का पेट भरे। ■

यादों के झरोखे से

नूतन स्मृति व्याख्यान सह प्रभावती सम्मान समारोह
एस.डी.सी., रांची, 9 अक्टूबर 2018

झारखंड के राज्यपाल सैयद अहमद द्वारा सम्मान, राजभवन, रांची

महंगाई के खिलाफ एक दिवसीय सेमिनार एवं रैली
20 जुलाई 2009, संत जोसेफ क्लब, रांची

पुस्तक ''बिरुवार गमछा'' का लोकार्पण समारोह
सूचना भवन, रांची

पुणे की रजिया पटेल को प्रभावती सम्मान देते हुए
15 सितंबर 2013, जे. पी. निवास, पटना

डॉ. रोज केरकेट्टा को प्रभावती सम्मान
20 सितंबर 2014, एस.डी.सी., रांची

झारखंड जतरा
8-9 अगस्त 2017, एच.पी.डी.सी., रांची